ॐ ह्रीँ अर्हं नमः

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः

श्री राजनगर जैन ज्ञानमंजरी

मौखिक/लिखित नूतन अभ्यासक्रम

प्रकाशक

शताधिक वर्ष प्राचीन श्रुततीर्थ सम

श्री राजनगर जैन श्वे. धार्मिक ईनामी परीक्षा ट्रस्ट,

अहमदाबाद

ट्रस्ट रजिस्टर नं. ए/१३८२

प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थी मित्रों और शिक्षक गण,

इस वर्ष से हमारा पाठ्यक्रम बदल गया है। इस बदले हुए नए पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए, विद्यार्थियों की सुविधा और सर्वश्रेष्ठ परिणाम के लिए यह नई पूरक पुस्तिका (सप्लीमेंट्री) तैयार की गई है।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह पूरक पुस्तिका हमारे द्वितीय संस्करण की पूरक आवृत्ति के रूप में प्रकाशित की गई है। इस वर्ष जो भी विद्यार्थी परीक्षा देने वाले हैं, वे इस बदले हुए नए पाठ्यक्रम को विशेष रूप से ध्यान में रखें और उसी के अनुसार अपनी परीक्षा की तैयारी करें।

नए पाठ्यक्रम के अनुसार कक्षा में जो भी बदलाव किए गए हैं और जो नई बातें जोड़ी गई हैं, उन सभी नवीन विवरणों को इस पूरक संस्करण में पूरी तरह से शामिल कर लिया गया है। ताकि विद्यार्थी नए बदलावों से अवगत हो सकें और परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकें। आशा है कि यह पुस्तिका आप सभी के अध्ययन में बहुत उपयोगी और मार्गदर्शक साबित होगी।

मौखिक कक्षा १

सूत्र :	नवकार महामंत्र से सामाइय-वयजुत्तो तक (१ से ११)	३०
काव्य :	स्तुति: देखी मूर्ति, आव्यो शरणे, प्रभु दर्शन के दोहे	१५
	ज्ञान के ५ खमासमणा के दोहे, आरती तथा मंगलदीवा	१५
नाम :	चौबीस तीर्थंकरों के नाम, नवपद के नाम, मास के नाम और तिथि	१५
विधि :	गुरुवंदन की विधि (प्रेक्टिकल के साथ)	५
स्तुति :	रत्नाकर पच्चीसी: गाथा १ से ५	१०
	राजनगर प्रश्नोत्तरी : १ से १०	१०
		१००

ज्ञान के ५ खमासमणा

मतिज्ञान : समकित श्रद्धावंतने उपन्युं ज्ञान प्रकाश,
प्रणमुं पदकज तेहना भाव धरी उल्लास। १

श्रुतज्ञान : पवयण श्रुत सिद्धांत ते आगम समय वखाण,
पूजो बहुविध रागथी, चरणकमल चित्त आण। २

अवधिज्ञान : उपन्यो अवधिज्ञाननो, गुण जेहने अविकार,
वंदना तेहने माहरी, श्वास मांहे सो वार। ३

मन:पर्यवज्ञान : ए गुण जेहने उपन्यो, सर्वविरति गुणठाण,
प्रणमुं हितथी तेहना, चरणकमल चित्त आण। ४

केवलज्ञान : केवल दंसण नाणनो, चिदानंदघन तेज,
ज्ञानपंचमी दिन पूजीये, विजयलक्ष्मी शुभ हेज। ५

गुरुवंदन की विधि
(प्रेक्टीकल करना)

• • •

मौखिक कक्षा २

सूत्र :	जगचिंतामणि से संसारदावानल (१२ से २२)	३०
काव्य :	चैत्यवंदन: (१) सकलकुशलवल्ली, (२) आश पूरे प्रभु पासजी	२०
	स्तवन : अंतरजामी सुण...	
	थोय : शंखेश्वर पासजी पूजीए (४ गाथा)	
विधि :	चैत्यवंदन की विधि (प्रेक्टिकल - मुद्रा के साथ)	१०
	अष्टप्रकारी पूजा और नवांगी पूजा के दोहे	१५
	राजनगर प्रश्नोत्तरी: प्रश्न ११ से २५	१५
कहानी:	भगवान महावीर और चंडकौशिक की कहानी	१०
		१००

भगवान महावीर और चंडकौशिक की कहानी

बहुत समय पहले की बात है। पूर्व भव का एक तपस्वी जैन साधु मृत्यु के समय तीव्र क्रोध के भाव आने के कारण अपने चौथे भव में 'चावाल' गाँव के पास एक जंगल में कनकखल नाम के तापसों के आश्रम में 'चंडकौशिक' नाम के एक अत्यंत भयानक और विषैले (दृष्टिविष) सर्प के रूप में पैदा हुआ। वह सर्प इतना अधिक जहरीला था कि यदि वह गुस्से में किसी की तरफ देख लेता या फुफकार मार देता, तो वह पशु या पक्षी वहीं तड़पकर मर जाता था। इस भयानक साँप के डर से लोगों ने उस जंगल के रास्ते का उपयोग करना ही बंद कर दिया था।

एक बार प्रभु महावीर विहार करते हुए श्वेताम्बी नगरी जाने के लिए इसी रास्ते से गुजर रहे थे। गाँव के लोगों ने प्रभु को रोका और कहा: "हे भगवान! आगे मत जाइए, वहाँ एक कालमुख साँप रहता है। वह किसी को भी जीवित नहीं छोड़ता इसलिए आप दूसरे लंबे रास्ते से होकर श्वेताम्बी नगरी जाइए।"

लेकिन अनंत करुणा के सागर प्रभु महावीरने सोचा की इस जीव को प्रतिबोध देना चाहिए, और वे उसी भयानक रास्ते पर आगे बढ़ गए। जंगल में पहुंचकर अत्यंत शांत भाव से ध्यान में खड़े हो गए।

कुछ समय बाद जब चंडकौशिक ने भगवान को देखा तो वह क्रोध से आगबबूला हो गया। उसने सोचा-मेरी अनुमति के बिना यहाँ आने का साहस किसने किया? उसने भगवान की तरफ जोर से फुफकार की लेकिन प्रभु अडिग और शांत रहे। अंत में अत्यंत क्रोधित होकर उस सर्प ने भगवान के पैर के अंगूठे पर अपना जहरीला डंक मार दिया!

तभी एक महान चमत्कार हुआ! भगवान के अंगूठे से खून के स्थान पर दूध जैसा सफेद रस निकला। यह देखकर वह सर्प दंग रह गया! उसे अहसास हुआ कि यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं हैं। वह गहरे आश्चर्य में डूब गया और प्रभु की अत्यंत शांत मुद्रा को देखते ही उसका गुस्सा शांत होने लगा। उसी समय भगवान ने मधुर और गंभीर स्वर में कहा: "बुज्झ चंडकौशिया बुज्झ... हे चंडकौशिक! तू बोध पा और शांत हो।"

भगवान के इन करुणा भीगे शब्दों को सुनते ही सर्प को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसे समझ आ गया कि - अरेरे! मैंने पिछले जन्मों में कितना अधिक क्रोध किया था जिसके कारण मैं एक साधु से सर्प बन गया हूँ। उसे अपने किए पर बहुत पश्चाताप हुआ। उसने मन ही मन भगवान से क्षमा माँगी और निश्चय किया कि अब वह कभी किसी भी जीव को नुकसान नहीं पहुँचाएगा। उसने हिंसा का पूरी तरह त्याग कर दिया और मन से अनशन का संकल्प ले लिया।

प्रभु महावीर ने सर्प के बदलते भावों को जाना और अपनी करुणामयी दृष्टि से उस पर कृपा की। वह सर्प अब पूरी तरह शांत हो चुका था। वह किसी को काट न ले इसलिए उसने अपना मुँह दर में छुपा लिया और वहीं शांत पड़ा रहा। जब लोगों ने देखा कि अब वह भयानक साँप बिल्कुल शांत हो गया है तो वे आकर उसकी पूजा करने लगे और भक्तिभाव से उसके शरीर पर घी चढ़ाने लगे। घी की महक से वहाँ हजारों चींटियाँ आ गई और सर्प के कोमल शरीर को काटने लगीं। सर्प को असहनीय पीड़ा हो रही थी लेकिन उसने मन में विचार किया कि- यदि मैं थोड़ा भी हिला तो ये नन्हीं-नन्हीं चींटियाँ मर जाएँगी। ऐसी परम दया और धैर्य रखकर वह शांति से कष्ट सहता रहा। अंत में, इस प्रकार के उच्च करुणा भावों के साथ और भगवान की दयारूपी अमृत-दृष्टि की कृपा से वह सर्प पंद्रह दिन के बाद मृत्यु प्राप्त कर सहस्रार देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुआ।

बोध : यह कहानी क्रोध के सामने क्षमा और हिंसा के सामने अहिंसा की भव्य विजय का एक ज्वलंत उदाहरण है। क्रोध आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु है। यह कथा हमें सीखाती है कि हम चाहे कितनी भी भक्ति या तपस्या करते हो लेकिन यदि क्रोध पर नियंत्रण न हो तो सब कुछ व्यर्थ चला जाता है। इसके विपरीत, सच्चे हृदय से किया गया पश्चाताप जीव को भयानक पापों के बंधन से भी मुक्ति दिला सकता है।

● ● ●

<u>मौखिक कक्षा ३</u>

सूत्र : पुक्खरवरदीवड्ढे से इच्छामि पडिक्कमिउं (सूत्र २३ से ३५)	३०
अर्थ : नवकार, पंचिंदिय, खमासमण, इच्छाकार सूत्र (शब्दार्थ)	२०
काव्य : दोहा : काल अनादि... (प्रदक्षिणा का)	२०
चैत्यवंदन : सिद्धारथ सुत वंदीए...	
स्तवन : गिरुआ रे गुण...	
थोय : जय जय भवि हितकर (४ गाथा)	
विधि : सामायिक लेने - पारने की विधि (प्रेक्टिकल)	१०
राजनगर प्रश्नोत्तरी : २६ से ३५	१०
कहानी : मेघकुमार की कहानी	१०
	१००

श्री नमस्कार महामंत्र सूत्र - शब्दार्थ

नमो - नमस्कार करता हूँ	एसो - यह
अरिहंताणं - अरिहंत भगवंतों को	पंच नमुक्कारो - पाँच नमस्कार
सिद्धाणं - सिद्ध भगवंतों को	सव्वपाव - सभी पापों का
आयरियाणं - आचार्य महाराजाओंको	प्पणासणो - नाश करने वाला
उवज्झायाणं - उपाध्याय महाराजाओं को	मंगलाणं - मंगलों में
लोए - लोक में (संसार में)	च - और
सव्वसाहूणं - सर्व साधुओंको	सव्वेसिं - सर्व में

पढमं - प्रथम
हवइ - है
मंगलं - मंगलरूप

पंचिंदिय सूत्र – शब्दार्थ

पंचिंदिय - पाँच इंद्रियों को (विषयों में जाने से)
संवरणो - रोकने वाले
तह – तथा
नवविह - नौ प्रकार की
बंभचेर - ब्रह्मचर्य की
गुत्तिधरो - बाड़ (गुप्ति) को धारण करने वाले
चउविह - चार प्रकार के
कसाय - कषायों से
मुक्को - मुक्त (रहित)
इअ - इस प्रकार / यह
अट्ठारसगुणेहिं - अठारह गुणों से
संजुत्तो - युक्त (सहित)
पंचमहव्वय - पाँच महाव्रतों से
जुत्तो - युक्त (सहित)
पंचविहायार - पाँच प्रकार के आचार को
पालण - पालने में
समत्थो - समर्थ
पंचसमिओ - पाँच प्रकार की समिति से युक्त
तिगुत्तो - तीन गुप्ति से सहित
छत्तीसगुणो - छत्तीस गुणो से युक्त
गुरु - गुरु महाराज
मज्झ - मेरे (हैं)

खमासमण सूत्र - शब्दार्थ

इच्छामि - मैं इच्छा करता हूँ
खमासमणो - हे क्षमाश्रमण (साधु भगवंत)!
वंदिउं - वंदन करने की
जावणिज्जाए - अपनी शक्ति के अनुसार
निसीहिआए - पाप प्रवृत्तियों का त्याग किए हुए शरीर द्वारा।
मत्थएण - मस्तक से
वंदामि - मैं वंदन करता हूँ

इच्छकार सूत्र - शब्दार्थ

इच्छकार - मैं इच्छा करता हूँ
सुहराई - सुखपूर्वक रात्रि
सुहदेवसि - सुखपूर्वक दिन
सुखतप - सुखपूर्वक तपश्चर्या में
शरीरनिराबाध – रोग-रहित शरीर से
सुखसंजमजात्रा - सुखपूर्वक संयम-यात्रा में
निर्वहो छो जी - प्रवृत्त हो रहे हैं जी

मेघकुमार की कहानी

राजगृही नगरी के राजा श्रेणिक की धारिणी रानी के 'मेघकुमार' पुत्र थे। उनका विवाह आठ राजाओं की कन्याओं के साथ हुआ था। एक दिन वे प्रभु महावीर देव को वंदन करने गए। वहाँ प्रभु की देशना सुनकर मेघकुमार को वैराग्य हो गया और वे दीक्षा लेकर मुनि मेघकुमार बन गए। दीक्षा देने के बाद प्रभु ने उन्हें ज्ञान और संयम की शिक्षा (ग्रहण-आसेवन शिक्षा) सीखाने के लिए स्थविर मुनियों को सौंप दिया।

विहार करते हुए स्थविर मुनि दूसरे गाँव जाकर रात्रि विश्राम के लिए रुके। नवदीक्षित होने के कारण मेघकुमार का संथारा सबसे अंत में द्वार के पास आया।

रात में लघुशंका-दीर्घशंका (मातरू करने) के लिए आते-जाते साधुओं के पैर स्पर्श होने से और संथारे पर धूल गिरने के कारण मेघकुमार को रातभर नींद नहीं आई।

राजकुमार होने के कारण वे इस असुविधा से परेशान हो गए और मन में विचार किया कि- "मैं सुबह होते ही प्रभु को यह सब सौंपकर वापस अपने घर चला जाऊँगा।"

सुबह स्थविर भगवंत गाँव से विहार कर प्रभु महावीर के पास वापस आए।

उनके साथ मेघकुमार भी थे। अंतर्यामी प्रभु मेघकुमार के मन की बात जानते थे इसलिए उन्होंने कहा, "हे मेघमुनि! आज तुम्हें जो कष्ट हुआ है, वह तो तुम्हारे पूर्वभव के दुखों के आगे कुछ भी नहीं है। सुनो- इस जन्म से तीसरे भव पहले तुम वैताढ्य पर्वत पर छह दाँतों वाले और एक हजार हथिनियों के परिवार के स्वामी 'सुमेरुप्रभ' नाम के एक श्वेत (सफेद) हाथी थे। एक बार प्यास के कारण जब तुम तालाब में पानी पीने गए तो वहाँ की कीचड़ में फँस गए। तब तुम्हारे शत्रु हाथियों ने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचाई। वहाँ से मरकर तुम विंध्याचल के जंगलों में चार दाँतों वाले और सात सौ हथिनियों के स्वामी 'मेरुप्रभ' नाम के सफेद हाथी बने। वहाँ एक बार भयंकर जंगल की आग को देखकर तुम्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ। तब तुमने अपने परिवार की रक्षा के लिए अपनी सूंड से लताएँ, घास आदि उखाड़कर एक योजन जितनी साफ-सुथरी भूमि का एक सुरक्षित मंडल बनाया। जब दोबारा दावानल भड़का तब तुम अपने परिवार को लेकर उस सुरक्षित मंडल में चले गए। तुम्हें

देखकर जंगल के अन्य अनेक छोटे-बड़े पशु भी अपनी जान बचाने के लिए उसी घेरे में आकर बैठ गए। जगह कम होने के कारण तुम भी बहुत तंग जगह पर खड़े रहे।

उस समय खुजली मिटाने के लिए तुमने जैसे ही अपना एक पैर ऊपर उठाया, वैसे ही जगह की कमी से घबराया हुआ एक छोटा सा खरगोश (ससला) तुम्हारे पैर के नीचे आकर बैठ गया। जब तुम खुजली कर पैर वापस नीचे रखने ही वाले थे तब तुम्हारी दृष्टि उस खरगोश पर पड़ी। यदि तुम्हारा पैर नीचे आता तो वह खरगोश तुरंत कुचलकर मर जाता लेकिन दया भावना के कारण तुमने अपना वह भारी पैर हवा में ऊपर ही रोके रखा। दो दिन बाद जब दावानल शांत हुआ, तब सभी जानवर वहाँ से चले गए और वह खरगोश भी सुरक्षित निकल गया। दो दिनों तक लगातार एक पैर ऊपर रखने के कारण तुम्हारा शरीर पूरी तरह अकड़ चुका था इसलिए जैसे ही तुमने पैर नीचे रखना चाहा, तुम धड़ाम से नीचे गिर पड़े। दया की पावन भावना में लीन रहते हुए तुमने अपने प्राण त्याग दिए।

वहाँ से तुम 'मेघकुमार' के रूप में उत्पन्न हुए हो। हे मेघकुमार! अब तुम स्वयं सोचो कि तुम्हें इन पवित्र मुनियों के पैरों की धूल से अधिक दुख हुआ या उस पूर्वभव में सहे गए कष्टों में अधिक दुख था? यह सुनकर मेघकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। प्रभु के सम्मुख अपने मानसिक भटकाव के लिए अंतरात्मा से क्षमा याचना करते हुए, उन्होंने केवल नेत्रों को छोड़कर अपने पूरे शरीर को वोसिरा दिया और संयम में पूरी तरह दृढ़ हो गए। लंबे समय तक पवित्र दीक्षा का पालन कर वे 'विजय विमान' नामक स्वर्ग में देव बने। वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।

बोध : जैन धर्म की नींव "अहिंसा" है, जिसका अर्थ है- किसी भी जीव की हिंसा नहीं करना। यदि आप भी छोटे से छोटे जीव जैसे चींटी, मकोड़े, मच्छर आदि की रक्षा करेंगे और मांसाहार (नॉन-वेजिटेरियन) तथा जिलेटिन जैसे अशुद्ध पदार्थों से मिली हुई चीजों का त्याग करेंगे तो आप भी मेघकुमार की तरह आत्म-कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ सकेंगे।

• • •

मौखिक कक्षा ४

सूत्र	: नवकार से इच्छामि पडिक्कमिउं सूत्र (सूत्र १ से ३५ पुनरावर्तन), वंदित्तु (सूत्र ३६)	५०
अर्थ	: अब्भुट्ठिओ सूत्र (शब्दार्थ)	१०
काव्य	: स्तुति: अर्हन्तो भगवंत चैत्यवंदन: सामान्य जिन चैत्यवंदन(पद्मप्रभ और वासुपूज्य) थोय: अध्यात्म की थोय सज्झाय: अइमुत्ता मुनि की सज्झाय	२०
स्तुति	: अरिहंत वंदनावली : १ से ५ गाथा	१०
कहानी:	वज्रस्वामी की कहानी	१०
		१००

अब्भुट्ठिओ सूत्र – शब्दार्थ

इच्छाकारेण - इच्छापूर्वक
संदिसह - अनुमति दें जी
भगवन् - हे पूज्य / हे गुरुदेव
अब्भुट्ठिओ - खड़ा हुआ हूँ
मि - मैं
अब्भिंतर - भीतर
देवसिअं - दिन के अपराध की
खामेउं - क्षमा मांगता हूँ
जं किंचि - जो कोई
अपत्तिअं - अप्रीतिभाव
परपत्तिअं - विशेष अप्रीतिभाव
भत्ते - भोजन के विषय में
पाणे - पानी के विषय में
विणए - विनय के विषय में
वेयावच्चे - वैयावृत्य के विषय में
आलावे - एक बार बोलने के विषय में
संलावे - बार-बार बोलने के विषय में
उच्चासणे - गुरु से ऊँचे आसन पर बैठने के विषय में
समासणे - गुरु के समान आसन पर बैठने के विषय में
अंतरभासाए - गुरु जब बोल रहे हों, तब बीच में बोलने के विषय में
उवरिभासाए - गुरु द्वारा कही गई बात को काटकर अपनी बात ऊपर रखने या विशेष रूप से जताने के विषय में
जं किंचि - जो कुछ भी

मज्झ - मैंने	अहं - मैं
विणय-परिहीणं - विनय रहित आचरण किया हो	न जाणामि - नहीं जानता हूँ
सुहुमं - सूक्ष्म	तस्स - उस संबंधी
बायरं - बादर - स्थूल	मिच्छा - मिथ्या (निष्फल)
तुब्भे - आप	मि - मेरा
जाणह - जानते हैं	दुक्कडं - दुष्कृत, पाप, दोष

काव्य विभाग - स्तुति

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्री सिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैः ते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥

अध्यात्म की थोय

सोवनवाडी फूलडे छाई, छाब भरी हुं लावुंजी,
फूल ज लावुं ने हार गुंथावुं , प्रभुजीने कंठे सोहावुंजी,
उपवास करू तो भूख ज लागे, उनुं पाणी नवि भावेजी,
आंबिल करू तो लुखुं न भावे, नीवी ए डूचा आवेजी.. (१)
एकासणुं करू तो भूखे न रही शकुं, सुखे खाउं त्रण टंकजी,
सामयिक करू तो बेसी न शकुं, निंद्रा करू सारी रातजी,
देहरे जाउं तो खोटी ज थाउं, घरनो धंधो चुकुजी,
दान दउं तो हाथज धूजे, हैयेकंपारी छूटेजी.. (२)
जीवने जमडानु तेडुं आव्युं, सर्व मेलीने चालोजी,
रहो जमडाजी आजनो दहाडो, शत्रुंजे जईने आवुंजी,
शत्रुंजे जईने द्रव्य ज खर्चुं, मोक्ष मार्ग हुं मांगुजी,
घेला रे जीवडा घेलुं शुं बोले? आटला दिवस शुं कीधुं जी.. (३)
जाते जे जीवे पाछल भातुं, शुं शुं आवे साथेजी,
काचीकुलेरने खोखरी हांडी, काष्टना भारा साथेजी,

"ज्ञानविमल" गुरु एणि पेरे भाखे, ध्यावो अध्यातम ध्यानजी,
भाव भक्ति शुं जिनजीने पूजो, समकित ने अजवालोजी.. (४)

अरिहंत वंदनावली

जे चौद महास्वप्नों थकी निज मातने हरखावता,
ने गर्भमांही ज्ञान त्रयने गोपवी अवधारता;
ने जन्मतां पहेला ज चोसठ इंद्र जेने वंदता,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं। ॥१॥
महायोगना साम्राज्यमां जे गर्भमां उल्लासता,
ने जन्मता त्रण लोकमां महासूर्य सम प्रकाशता,
जे जन्मकल्याणक वडे सहु जीवोने सुख अर्पता,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं... ॥२॥
छप्पन दिक्कुमारी तणी सेवा सुभावे पामता,
देवेन्द्र करसंपुट महीं धारी जगत हरखावता,
मेरु शिखर सिंहासने जे नाथ जगना शोभता,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं... ॥३॥
कुसुमांजलिथी सुरअसुर जे भव्य जिनने पूजता,
क्षीरोदधिना न्हवणजलथी देव जेने सिंचता,
वली देवदुंदुभि नाद गजवी देवताओ रीझता,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं.. ॥४॥
मघमघ थता गोशीर्ष चंदनथी विलेपन पामता,
देवेन्द्र दैवी पुष्पनी माला गले आरोपता,
कुंडल-कडां मणिमय चमकता, हार मुकुटे शोभता,
एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं... ॥५॥

वज्रस्वामी की कहानी

अवंती देश के तुंगवन नाम के एक सुंदर कस्बे में धनपाल सेठ की पुत्री सुनंदा रहती थी। उसका विवाह धनगिरि नाम के ऐसे युवा व्यापारी से हुआ, जिसके दिल में वैराग्य के दीप जल रहे थे। जब सुनंदा गर्भवती थी तभी धनगिरि ने

संसार का त्याग कर सिंहगिरि महाराज के पास दीक्षा ले ली। मुनि धनगिरि संयम के मार्ग पर आगे बढ़े और सुनंदा के घर पर एक पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का मुख देखकर सखियाँ बोलीं, "तुम्हारे पिता ने दीक्षा ले ली वो होते तो कितना सुंदर जन्मोत्सव मनाया जाता!" मात्र 'दीक्षा' शब्द सुनते ही उस नवजात शिशु को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह बालक पूर्वभव में अष्टापद पर्वत पर पुंडरीक अध्ययन सुनकर आया हुआ जृंभकदेव का जीव था। उसे समझ आ गया कि संसार असार है और उसी क्षण उसके भीतर दीक्षा लेने की तीव्र इच्छा जाग उठी। लेकिन एक अबोध बच्चा अपनी इच्छा कैसे व्यक्त करे? उसने रोना शुरू कर दिया। माता सुनंदा और सखियों ने उसे चुप कराने के बहुत प्रयास किए लेकिन सब निष्फल रहे। छह महीने बीत गए पर बच्चे का रोना बंद नहीं हुआ, सुनंदा इस से तंग आ गई। वह बार-बार कहती, " यदि इसके पिता आएँ, तो मैं अभी यह बच्चा उन्हें सौंप दूँ।"

संयोगवश, सिंहगिरि गुरुमहाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ उसी नगर में पधारे। जब मुनि धनगिरि और आर्य समित गोचरी के लिए निकले तब गुरुदेव ने अपने ज्ञानबल से आशीर्वाद दिया। गुरु बोले, "आज महान लाभ होगा, जो भी मिले उसे व्होर कर आना, सचित्त-अचित्त का विचार मत करना।" मुनि घूमते-घूमते सुनंदा के घर पहुँचे सुनंदा दुःखी और आवेश में थी। लो यह आपका बेटा, इसने मुझे बहुत परेशान किया है अब तो यह काल जैसा लगता है, ले जाओ! सुनंदा के ये वचन सुनकर मुनि धनगिरि ने चेतावनी दी की बाद में पछताना मत, यह वापस नहीं मिलेगा। सखियों की गवाही (साक्षी) के साथ सुनंदा ने बालक सौंप दिया और मुनि ने उसे अपनी झोली में ले लिया। गुरु महाराज ने देखा कि झोली अत्यंत भारी है इसलिए बालक का नाम 'वज्र' (वज्र जैसा भारी) रखा। जैसे ही गुरुदेव ने वज्रकुमार को गोद में लिया, बालक का रोना गायब हो गया और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। बालक के पालन-पोषण की जिम्मेदारी श्राविकाओं और साध्वीजी महाराज को सौंपी गई। साध्वीजी जब ग्यारह अंगों का वाचन करती थीं, तब पालने में लेटे वज्रकुमार उसे सुनते थे। अद्भुत बुद्धि-प्रतिभा के कारण तीन वर्ष की आयु में ही वे ग्यारह अंगों के मुखपाठी बन गए !

तीन वर्ष बाद सुनंदा के हृदय में मातृत्व जागा और उसने अपने पुत्र को वापस पाने की माँग की। मुनियों ने मना कर दिया, बात बढ़ी और मामला राजा

की अदालत (कचहरी) तक पहुँच गया। राजा ने न्याय करते हुए कहा, "बालक स्वयं जिसके पास जाएगा, उसे ही सौंपा जाएगा"। सबके बीच एक परीक्षा आयोजित की गई, माता सुनंदा ने सुंदर खिलौने, मिठाइयाँ और गहने सामने रखे।

उसने बड़े प्यार भरी आवाज़ में वज्र को पुकारा लेकिन बालक की नज़र संसार के साधनो पर नहीं थी। दूसरी तरफ, मुनि धनगिरि ने केवल अपना रजोहरण (ओघा) हवा में लहराया। मात्र तीन वर्ष का वज्रकुमार नाचता-कूदता हुआ सारे वैभवों को त्यागकर अपने पिता की गोद में जाकर बैठ गया। यह दृश्य देखकर पूरा नगर स्तब्ध रह गया और सुनंदा के हृदय में भी वैराग्य की लहर जाग उठी। पुत्र के त्याग से प्रेरित होकर सुनंदा ने भी संसार छोड़ दिया और सिंहगिरि महाराज के पास दीक्षा अंगीकार कर ली। साढ़े तीन (छह वर्ष) की छोटी उम्र में वज्रकुमार ने दीक्षा ली और आर्य वज्रस्वामी के रूप में विख्यात हुए। वे जैन शासन के अंतिम 'दशपूर्वी' आचार्य बने और अनेक जीवों का कल्याण किया।

बोध : यह कथा हमें समझाती है कि संस्कार और वैराग्य का उम्र से कोई संबंध नहीं होता। वज्रस्वामी ने पालने में रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया, जो यह दिखाता है कि जिज्ञासा कहीं भी फलित हो सकती है। माता सुनंदा की कहानी सीखाती है कि मोह और आसक्ति दुःख का कारण हैं जबकि त्याग शांति देता है। बाल वज्रकुमार की तरह यदि हम भी सच्चा 'ओघा' (संयम का मार्ग) ले लें तो कोई भी भौतिक आकर्षण हमें मुक्ति के मार्ग पर जाने से नहीं रोक सकता।

● ● ●

मौखिक कक्षा ५

सूत्र : 'आयरिय उवज्झाए' से 'सकलतीर्थ' तक (सूत्र ३७ से ५१)	३०
अर्थ : इरियावहियं सूत्र, तस्स उत्तरी सूत्र (शब्दार्थ)	१०
काव्य : चैत्यवंदन: शांति जिनेश्वर सोलमा...	१५
स्तवन: शांति जिनेश्वर साचो साहिब...	
थोय: शांति सुहंकर... (४ गाथा)	
विधि : मुहपत्ति पडिलेहण के ५० बोल (प्रेक्टिकल सहित)	१०
वज्रपंजर स्तोत्र और सकलीकरण मंत्र (प्रेक्टिकल सहित)	१०

राजनगरी प्रश्नोत्तरी : ३६ से ५०	१५
कहानी : जंबूस्वामी की कहानी	१०
	१००

इरियावहियं सूत्र (लघु प्रतिक्रमण सूत्र) के अर्थ

इच्छाकारेण - इच्छापूर्वक
संदिसह - आज्ञा दीजिए।
भगवन् - हे भगवंत! / हे पूज्य!
इरियावहियं - मार्ग में चलने-फिरने से जो पाप क्रिया या जीवों की विराधना हुई हो
पडिक्कमामि - मैं उससे पीछे हटता हूँ (उस पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ)
इच्छं - (आपकी आज्ञा) प्रमाण है सहर्ष स्वीकार है
इच्छामि पडिक्कमिउं - मैं प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ
इरियावहियाए - मार्ग में आने-जाने की क्रिया के कारण
विराहणाए - जीवों की जो विराधना (कष्ट या हिंसा) हुई हो
गमणागमणे - आते और जाते समय
पाणक्कमणे - छोटे-बड़े प्राणियों को दबाया या कुचला हो
बीयक्कमणे - वनस्पति के बीजों को दबाया या कुचला हो या पीसे हों
हरियक्कमणे - हरी वनस्पति को दबाया या कुचला हो
ओसा - ओस की बूंदों
उत्तिंग - चींटियों के बिलों या बांबी (उत्तिंगा)
पणगदग - शैवाल तथा कच्चे पानी
मट्टी - सचित्त मिट्टी
मक्कडासंताणा - मकड़ी के जालों
संकमणे - इन सभी के ऊपर से गुजरने या इन्हें दबाने से
जे - जो
मे - मुझसे / मैंने
जीवा - जीव
विराहिया - विराधना (हिंसा/कष्ट) की हो
एगिंदिया - एकेन्द्रिय जीव
बेइंदिया - बेइन्द्रिय जीव
तेइंदिया - तेइन्द्रिय जीव
चउरिंदिया - चतुरिन्द्रिय जीव
पंचिंदिया - पंचेन्द्रिय जीव
अभिहया - पैर से लात या धक्के से मारे हों
वत्तिया - धूल या मिट्टी से ढके हों
लेसिया - जमीन (भूमि) के साथ घसीटे
संघाइया - इकट्ठा (एकत्र) किए हों

संघट्टिया - आपस में स्पर्श किए (टकराए) हों
परियाविया - परिताप (दुख और संताप) पहुँचाया हो
किलामिया - खेद (कष्ट या थकावट) पहुँचाया हो
उद्दविया - डराया या भयभीत किया हो (त्रास पहुँचाया हो)
ठाणाओ ठाणं - एक स्थान से दूसरे स्थान पर
संकामिया - हटाया हो या भेजा हो
जीवियाओ ववरोविया - जीवित रहने के अधिकार से मुक्त किया हो (अर्थात प्राण हरे हों)
तस्स - वह (उस संबंधी)
मिच्छा - मिथ्या (निष्फल और नष्ट) हो
मि - मेरा
दुक्कडं - दुष्कृत (पाप या दोष)

तस्स उत्तरी सूत्र (उत्तरीकरण सूत्र) के अर्थ

तस्स - उसकी (उस पाप की)
उत्तरीकरणेणं - पुनः शुद्धि करने के लिए
पायच्छित्तकरणेणं - प्रायश्चित करने के द्वारा
विसोहीकरणेणं - विशेष रूप से पवित्र (शुद्ध) करने के लिए
विसल्लीकरणेणं - शल्य रहित होने के लिए
पावाणं कम्माणं - पाप कर्मों को
निग्घायणट्ठाए - नष्ट करने के उद्देश्य से
ठामि - मैं करता हूँ
काउस्सग्गं - कायोत्सर्ग

मुहपत्ति पडिलेहण के ५० बोल
(भाईओ के ५० बोल,
बहनो के ४०)

वज्रपंजर स्तोत्र

दोनों हाथ जोड़कर -

ॐ परमेष्ठी नमस्कारं, सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र, पंजराभं स्मराम्यहम् ॥१॥

हाथ मस्तक पर रखकर -

ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कम् शिरसि स्थितम् ॥२॥

हाथ मुख पर रखकर -

ॐ नमो सव्व सिद्धाणं, मुखे मुखपटं वरम् ॥३॥

हाथ शरीर के चारों ओर (ऊपर) फेरते हुए -

ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षाति शायिनी ॥४॥

दोनों मुट्ठियाँ बंद करके -

ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दढम् ॥५॥

पैरों पर हाथ फेरते हुए -

ॐ नमो लोए सव्व साहूणं, मोचके पादयोः शुभे ॥६॥

जमीन पर हाथ फेरते हुए -

एसो पंच नमुक्कारो, शिलावज्रमयि तले ॥७॥

चारों ओर उंगली घुमाते हुए -

सव्व पावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः ॥८॥

उंगली नीचे की ओर घुमाते हुए –

मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगार खातिका ॥९॥

सिर के ऊपर हाथ फेरकर -

स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलं ॥१०॥
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देह रक्षणे।
महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव नाशिनी।
परमेष्टी पदोद्भूता, कथिता पूर्व सूरिभिः।
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठि पदैः सदा ॥११॥
तस्य न स्याद् भयं व्याधि-राधिश्चापि कदाचन ॥१२॥

सकलीकरण मंत्र

सकलीकरण का अर्थ: सकलीकरण का अर्थ होता है 'शरीर को मंत्रों से पवित्र और सुरक्षित करना' । यह विधि विशेष रूप से पूजा, साधना या सामायिक की शुरुआत में की जाती है ताकि बाहरी बाधाओं या अशुभ तत्वों से रक्षा हो सके।

विधि: इस मंत्र के पांच अक्षर शरीर के पांच केंद्रों (भागों) से जुड़े हुए हैं:

- क्षि (Kshi) : घुटना
- प (Pa) : नाभि
- ॐ (ओम) (Om) : हृदय
- स्वा (Sva) : मुख
- हा (Ha) : मस्तक (ललाट)

प्रक्रिया : आरोह (चढ़ता क्रम): घुटने से शुरुआत करके मस्तक तक मंत्र बोलते हुए शरीर को स्पर्श करना। (क्षि → प → ॐ → स्वा → हा)

अवरोह (उतरता क्रम): मस्तक से शुरुआत करके दोबारा घुटने तक मंत्र बोलते हुए नीचे की ओर आना। (हा → स्वा → ॐ → प → क्षि)

(यह विधि तीन बार करनी चाहिए।)

महत्व:

1. **रक्षा:** ऐसी दृढ़ श्रद्धा है कि इस विधि को करने से दुर्घटनाओं और अशुभ घटनाओं से बचा जा सकता है।
2. **एकाग्रता:** इससे मन और शरीर स्थिर होते हैं तथा ध्यान लगाने की शक्ति बढ़ती है।

जंबूस्वामी की कहानी

आज से लगभग २५०० वर्ष पुरानी यह कहानी है। मगध देश के सुग्राम नगर में भवदत्त और भवदेव नाम के दो भाई रहते थे। उनमें से भवदत्त ने जैन दीक्षा ली हुई थी। उन्होंने नागिला नाम की स्त्री से विवाहित अपने भाई भवदेव को भी दीक्षा लेने की प्रेरणा दी। भवदेव ने अपने भाई के संकोच और लिहाज में आकर दीक्षा तो ले ली लेकिन उनका मन नागिला में ही अटका हुआ था।

समय बीतने पर भवदत्त मुनि अपनी आयु पूर्ण कर स्वर्ग सिधा गए। इसके बाद भवदेव अपनी पूर्व पत्नी नागिला से मिलने आए लेकिन नागिला अत्यंत धर्मनिष्ठ और पवित्र विचारों वाली स्त्री थी, उसने भवदेव को बहुत ही सुंदर वैराग्यपूर्ण उपदेश दिया। नागिला के इस बोध से जागृत होकर मुनि पुनः अपने गुरु भगवंत के पास लौट गए और उसके बाद दोषरहित संयम धर्म का पालन करके देवलोक में गए।

देवलोक से च्यवन होकर भवदेव का जीव आगे चलकर 'शिवकुमार' के रूप में उत्पन्न हुआ। एक बार उन्हें संसार से वैराग्य हुआ, किंतु माता-पिता ने दीक्षा की अनुमति नहीं दी इसलिए उन्होंने गृहस्थ जीवन में ही रहकर छठ के पारणे में छठ का तप और पारणे के दिन आयंबिल करके धर्म की उग्र आराधना की। आजीवन इस प्रकार धर्म का पालन करके वे ब्रह्म देवलोक में 'विद्युन्माली' देव बने।

एक बार राजगृही नगरी के ऋषभदत्त सेठ अपनी पत्नी धारिणी के साथ श्री सुधर्मा स्वामी को वंदन करने वैभारगिरी पर्वत पर गए। वहाँ धारिणी माता ने गणधर भगवंत से पूछा कि उन्हें पुत्र की प्राप्ति होगी या नहीं। गणधर भगवंत ने कहा: "हम ऐसे सांसारिक प्रश्नों के उत्तर नहीं देते तो भी आपको महापुण्य का लाभ होने वाला है और इसका परिणाम पवित्र होने के कारण हम कहते हैं कि- आपको एक सौ आठ आयंबिल की तपश्चर्या करने से जंबूवृक्ष के स्वप्न से सूचित पुत्र रत्न प्राप्त होगा"। इसके बाद धारिणी देवी ने भावपूर्ण तरीके से आयंबिल तप किया और दूसरी ओर विद्युन्माली देव का आयुष्य पूर्ण होने पर वे स्वर्ग से च्यवन होकर धारिणी माता के गर्भ में उत्पन्न हुए। माता ने जंबुवृक्ष का स्वप्न देखा, जन्म के पश्चात माता-पिता ने उनका नाम 'जंबूकुमार' रखा।

युवावस्था में श्री सुधर्मास्वामी का वैराग्य से भरा उपदेश सुनकर जंबूकुमार घर आए और माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी लेकिन माता-पिता के अत्यधिक आग्रह के वश होकर उन्हें आठ कन्याओं के साथ विवाह करना पड़ा। विवाह की पहली ही रात को उन्होंने अपनी आठों पत्नियों को संसार की असारता का ऐसा सुंदर बोध दिया कि वे सब भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई। उनके विवाह की उसी रात घर में 'प्रभव' नाम का चोर अपने ५०० चोरों की टोली के साथ चोरी करने आया हुआ था। जंबूकुमार का अपनी पत्नियों के साथ आध्यात्मिक संवाद सुनकर प्रभव चोर और उसके साथियों का हृदय परिवर्तन हो गया। जंबूकुमार ने उन सभी को भी प्रतिबोधित किया। इस प्रकार दूसरे ही दिन जंबूकुमार, उनके माता-पिता, ८ पत्नियाँ, पत्नियों के माता-पिता और ५०० चोर- इन सबने मिलकर कुल ५२७ (पाँच सौ सत्ताईस) लोगों ने श्री सुधर्मा गणधर भगवंत के पास दीक्षा अंगीकार की।

श्री सुधर्मा स्वामी गणधर भगवंत ने भगवान महावीर के मुख से सुने हुए सभी आगमों की रचना श्री जंबूस्वामी को ही संबोधित करके की है। दीक्षा लेने के बीसवें

वर्ष में जंबूकुमार को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अंत में, वे इस जैन शासन के अंतिम केवली हुए और प्रभवस्वामी को अपनी गादी (पाट) सौंपकर, प्रभु महावीर परमात्मा के निर्वाण के ६४वें वर्ष में मोक्ष पधारे।

बोध : जिस प्रकार अग्नि सोने को तपाकर शुद्ध करती है, उसी प्रकार सच्चा तप आत्मा पर लगे हुए पुराने कर्मों को नष्ट कर देता है। जिस प्रकार जंबूस्वामी ने संसार के सभी सुखों का त्याग कर, दृढ़ मनोबल और शुद्ध भावों के साथ तपस्या की और 'केवलज्ञान' प्राप्त किया, वैसा ही हमारा भी लक्ष्य होना चाहिए। सच्चे हृदय से और शुद्ध भाव से की गई छोटी सी भक्ति भी आत्मा के लिए मोक्ष के द्वार खोल सकती है।

• • •

मौखिक कक्षा ६

सूत्र	: सकलार्हत्, स्नातस्या, संतिकरम् (सूत्र ५२ से ५४)	३०
अर्थ	: अन्नत्थ सूत्र (शब्दार्थ)	१०
	कायोत्सर्ग के १६ आगार + १९ दोष	१०
काव्य	: दोहे: अनंत चउवीसी जिन नमुं...	२५
	चैत्यवंदन: श्री सीमंधर जगधणी...	
	स्तवन: सुणो चंदाजी...	
	थोय: सीमंधर जिनवर... (१ गाथा),	
	आदि जिनवर राया... (१ गाथा)	
	सज्झाय: प्रसन्नचंद्र राजर्षि की सज्झाय	
विधि	: २५ आवश्यक + सत्रह संडासा पूर्वक खमासमणा (प्रेक्टिकल सहित)	१०
	राजनगर प्रश्नोत्तरी : ५१ से ६०	१५
		१००

अन्नत्थ सूत्र के शब्दार्थ

अन्नत्थ - इसके अलावा (नीचे बताई गई १२ बातों को छोड़कर)
ऊससिएणं - ऊँची (लंबी) सांस लेने से
नीससिएणं - नीचे सांस छोड़ने से (सांस बाहर निकालने से)
खासिएणं - खांसने से
छीएणं - छींक आने से
जंभाइएणं - उबासी आने से
उड्डुएणं - डकार आने से
वायनिसग्गेणं - अपान वायु छूटने से
भमलीए - चक्कर आने से
पित्तमुच्छाए - पित्त के प्रकोप के कारण मूर्च्छा (बेहोशी) आने से
सुहुमेहिं - सूक्ष्म
अंगसंचालेहिं - शरीर के अंगों के हिलने-डुलने से
खेलसंचालेहिं - बलगम (थूक) आने से
दिट्ठिसंचालेहिं- दृष्टि के हिलने से या इधर- उधर देखने से
एवमाइ एहिं - इन आदि (इत्यादि)

आगारेहिं - आगारों से (इन दोषों को टालकर)
अभग्गो - अखंडित (बिना टूटे)
अविराहिओ - अविराधित
हुज्ज - हो
मे - मेरा
काउस्सग्गो - कायोत्सर्ग
जाव - जब तक
अरिहंताणं - अरिहंत
भगवंताणं - भगवंतों को
नमुक्कारेणं - नमस्कार करके
न पारेमि - पारणा न करूँ (कायोत्सर्ग न खोलूँ)
ताव - तब तक
कायं - काया को
ठाणेणं - एक स्थान पर स्थिर रखकर
मोणेणं - मौन रहकर
झाणेणं - ध्यान के द्वारा
अप्पाणं - अपनी काया को
वोसिरामि - वोसिराता हूँ

वांदणा के २५ आवश्यक

आवश्यक किसे कहते हैं? जो अवश्य ही पालन करने योग्य हों, उन्हें आवश्यक कहते हैं। वांदणा के २५ आवश्यक इस प्रकार हैं:

(१) २ अवनत (२) १ यथाजात (३) १२ आवर्त्त
(४) ४ शीर्षनमन (५) ३ गुप्ति (६) २ प्रवेश (७) १ निष्क्रमण

नोट: परीक्षा में ये २५ आवश्यक और १७ संडासा प्रेक्टिकल करके दिखाने होंगे। नीचे दी गई जानकारी केवल समझने के उद्देश्य से है:

- २ अवनत: वंदना करते समय शरीर के ऊपरी भाग को दो बार झुकाना। पहला वंदन करने के लिए गुरु महाराज के क्षेत्र (अवग्रह) में प्रवेश करने की आज्ञा मांगते हुए जब "अणुजाणह मे मिउग्गहं" पद बोला जाता है, तब शरीर का ऊपरी हिस्सा झुकाया जाता है। यह पहला 'अवनत' हुआ। दूसरी बार वंदना के दौरान दूसरा अवनत होता है। इस प्रकार २ अवनत रूपी दो आवश्यक हुए।
- १ यथाजात: जिस प्रकार जन्म लेते समय बच्चे के दोनों हाथ जुड़े होते हैं, उसी प्रकार संपुट किए हुए (जुड़े हुए) हाथों को मस्तक (ललाट) से लगाना 'यथाजात' आवश्यक कहलाता है।
- १२ आवर्त: एक वंदना में ६ आवर्त्त आते हैं, तो दो वंदना मिलाकर कुल १२ आवर्त्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं: पहले ३ आवर्त्त "अहो कायं काय" बोलते समय होते हैं। इसमें 'अ' बोलते समय दोनों हाथों की दसों उंगलियों को नाखूनों के स्पर्श के बिना गुरु के चरणों में छुआया जाता है, और 'हो' बोलते समय सीधे हाथ से अपने मस्तक का स्पर्श किया जाता है। इस प्रकार दो-दो अक्षरों के तीन पद बोलते हुए ३ आवर्त्त हुए। इसके बाद हाथ जोड़कर "वइक्कंतो" तक बोला जाता है। वहाँ से आगे तीन-तीन अक्षरों के "जत्ता भे, जवणि ज्जं च भे" के रूप में दूसरे ३ आवर्त्त जानने चाहिए। इसमें पहला अक्षर 'ज' बोलते समय गुरु चरणों में उल्टे हाथ से स्पर्श किया जाता है; 'त्ता' बोलते समय दोनों सीधे हाथों को बीच में विश्राम रूप में रखा जाता है; और तीसरे अक्षर 'भे' पर हाथों को मस्तक से स्पर्श कराया जाता है। यह एक आवर्त्त हुआ। इसी तरह "जवणिज्" और "जं च भे" के ३-३ अक्षरों पर ऊपर बताई गई विधि के अनुसार ३ आवर्त्त होते हैं। इस प्रकार पहली वंदना में ६ आवर्त्त और उसी तरह दूसरी वंदना में ६ आवर्त्त मिलकर कुल १२ आवर्त्त होते हैं।
- ४ शीर्षनमन: शीर्षनमन का अर्थ है ४ बार सिर झुकाना। इसमें पहले ३ आवर्त्त होने के बाद 'संफासं' बोलते समय पहली बार, और दूसरे ३ आवर्त्त होने के बाद 'खामेमि' बोलते समय दूसरी बार सिर झुकाया जाता है। इस प्रकार एक वंदना में २ बार और दो वंदना मिलाकर कुल ४ शीर्षनमन होते हैं।

- ३ गुप्ति: वंदना करते समय मन, वचन और काया की गुप्ति (संयम) रखना। (अर्थात शरीर को स्थिर और एकाग्र रखना)।
- २ प्रवेश और १ निष्क्रमण: प्रवेश यानी दो बार गुरु महाराज की आज्ञा लेकर उनके क्षेत्र (अवग्रह) में जाना। और निष्क्रमण यानी अवग्रह से बाहर आना। इस विधि में पहली वंदना के समय आज्ञा मांगकर 'निसीहि' कहकर संडासा (सांधा) और जमीन को पूंजकर अवग्रह में प्रवेश किया जाता है। वंदना पूरी होने पर "आवस्सिआए" कहकर पीछे की ओर पूंजते हुए अवग्रह से बाहर निकला जाता है। इसके बाद दूसरी वंदना के लिए दोबारा प्रवेश किया जाता है लेकिन इस बार बाहर नहीं निकला जाता, इसलिए "आवस्सिआए" नहीं कहा जाता। इस तरह २ बार प्रवेश और १ बार निष्क्रमण (बाहर निकलना) होता है।

  इस प्रकार वांदणा के दौरान कुल २५ आवश्यकों का ध्यान रखना चाहिए।

सत्रह संडासा (प्रमार्जना) की विधि

१७ संडासा: संडासा का अर्थ 'साणसी' (चिमटा) होता है। पंचांग प्रणिपात करते समय शरीर के जो-जो अंग चिमटे या जोड़ की तरह मुड़ते हैं, उन स्थानों पर जीवों की विराधना को रोकने के लिए १७ स्थानों पर प्रमार्जना करनी चाहिए। इसीलिए इसका पूरा नाम '१७ संडासा प्रमार्जना' है।

स्थान और विधि:

- ३ बार पीछे, दाएँ पैर पर-बीच में और बाएँ पैर पर।
- ३ बार आगे, दाएँ पैर पर-बीच में और बाएँ पैर पर।
- ३ बार अवग्रह में प्रवेश करने की भूमि (जमीन) पर।
- १ बार दाएँ मस्तक (सिर) से शुरू करके बाएँ हाथ के ऊपर से उसकी कोहनी तक।
- १ बार बाएँ मस्तक से शुरू करके दाएँ हाथ के ऊपर से उसकी कोहनी तक।
- ३ बार चरवले के ऊपर - मस्तक (सिर) झुकाने के स्थान पर।
- ३ बार खड़े होने से पहले पैर रखने के स्थान पर।

विशेष नोट: पहले ९ प्रमार्जना चरवले से, उसके बाद की ५ मुहपत्ति से और आखिरी ३ प्रमार्जना चरवले से करनी होती हैं।

राजनगर प्रश्नोत्तरी

प्र.६०(१). आठ कर्मों के नाम और उनके भेद बताइए।

उ. आठ कर्मों के नाम और उनके भेद निम्नलिखित हैं:

	कर्म का नाम	भेद
(१)	ज्ञानावरणीय कर्म	५
(२)	दर्शनावरणीय कर्म	९
(३)	वेदनीय कर्म	२
(४)	मोहनीय कर्म	२८
(५)	आयुष्य कर्म	४
(६)	नाम कर्म	१०३
(७)	गोत्र कर्म	२
(८)	अंतराय कर्म	५

● ● ●

मौखिक कक्षा ७

सूत्र : अजितशांति स्तवन (सूत्र ५५)	२५
अर्थ : लोगस्स सूत्र (शब्दार्थ)	१०
काव्य: दोहे : श्री सिद्धाचल के नौ दोहे चैत्यवंदन - श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र स्तवन - विमलाचल नितु वंदिए... थोय - शत्रुंजय मण्डण.... (४ गाथा)	२०
विधि : राइअ प्रतिक्रमण की विधि	२०
राजनगर प्रश्नोत्तरी : ६१ से ८०	१५
कहानी : चंदनबाला की कहानी	१०
	१००

लोगस्स सूत्र (नामस्तव सूत्र) अर्थ

लोगस्स - लोक को / लोक में
उज्जोअगरे - उद्योत करने वाले
धम्मतित्थयरे - धर्मरूपी तीर्थ की स्थापना करने वाले
जिणे - जिनों को
अरिहंते - अरिहंत भगवंतों को
कित्तइस्सं - मैं कीर्तन करूँगा / स्तुति करूँगा
चउवीसंपि - चौबीस
केवली - केवलज्ञानी भगवंतों को
उसभमजिअं - श्री ऋषभदेव और श्री अजितनाथ को
च – और
वंदे - मैं वंदना करता हूँ
संभवमभिणंदणंच - श्री संभवनाथ तथा श्री अभिनंदन स्वामी को
सुमइँ - श्री सुमतिनाथ को
पउमप्पहं - श्री पद्मप्रभ प्रभु को
सुपासं - श्री सुपार्श्वनाथ को
चंदप्पहं - श्री चंद्रप्रभ प्रभु को
सुविहिं - श्री सुविधिनाथ को
पुप्फदंतं(दूसरा नाम) - श्री पुष्पदंत को
सीयल सिज्जंस - श्री शीतलनाथ तथा श्री श्रेयांसनाथ को
वासुपुज्जं - श्री वासुपूज्य स्वामी को
विमलमणंतं - श्री विमलनाथ तथा श्री अनंतनाथ को
जिणं - जिन को
धम्मं - श्री धर्मनाथ को
संतिं - श्री शांतिनाथ को
कुंथुं - श्री कुंथुनाथ को
अरं - श्री अरनाथ को
मल्लिं - श्री मल्लिनाथ को
मुणिसुव्वयं - श्री मुनिसुव्रत स्वामी को
नमिजिणं - श्री नमि जिन (नमिनाथ) को
वंदामि - मैं वंदन करता हूँ
रिट्ठनेमिं - श्री अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) को
पासं - श्री पार्श्वनाथ को
तह - तथा
वद्धमाणं - श्री वर्धमान स्वामी (महावीर स्वामी) को
एवं - इस प्रकार
मए - मैंने
अभिथुआ - स्तुति किए गए
विहुय - विशेष रूप से क्षय (नष्ट) किए हैं
रयमला - कर्मरूपी रज (धूल) और मैल को जिन्होंने
पहीण - विशेष रूप से नष्ट किए हैं
जरमरणा - बुढ़ापा और मृत्यु को जिन्होंने
जिणवरा - सामान्य केवलियों में श्रेष्ठ

तित्थयरा - तीर्थंकर देव
मे - मुझ पर
पसीयंतु - प्रसन्न होवें
कित्तिय - कीर्तन किए गए (स्तुति किए गए)
वंदिय - वंदन किए गए
महिया - पूजे गए
जे ए - जो ये
लोगस्स - लोक में
उत्तमा - उत्तम हैं
सिद्धा - सिद्ध हुए हैं
आरुग्ग - आरोग्य
बोहिलाभं - सम्यग्दर्शन का लाभ
समाहिवरं - प्रधान समाधि
उत्तमं - उत्तम
दिंतु - प्रदान करें (दें)
चंदेसु - चंद्रमाओं के समूह से भी
निम्मलयरा- अत्यंत निर्मल
आइच्चेसु - सूर्यों के समूह से भी
अहियं - अधिक
पयासयरा - प्रकाश करने वाले
सागरवरगंभीरा - स्वयंभूरमण समुद्र की तरह, अत्यंत गंभीर ऐसे
सिद्धा - सिद्ध भगवंत
सिद्धिं - सिद्धि (मोक्ष)
मम – मुझे
दिसंतु - प्रदान करें

चंदनबाला की कहानी

जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी जब छद्मस्थ अवस्था (दीक्षा के बाद और केवलज्ञान से पहले की साधना का काल) में थे, तब उन्होंने एक अत्यंत कठिन और असंभव जैसा ‘अभिग्रह’ धारण किया था। उन्होंने निश्चय किया था कि मेरा सोचा हुआ संकल्प पूर्ण होगा तभी मैं पारणा करूँगा। उनका संकल्प इस प्रकार था कि: गोचरी व्होराने वाली स्त्री राजकुमारी हो, लेकिन वह दासी बनी हो। उसके पैरों में लोहे की बेड़ियाँ (जंजीरें) हों। उसका सिर मुंडाया हुआ हो। वह तीन दिनों की भूखी हो। उसके हाथ में सूपड़े में उड़द के बाकुले (उबले हुए उड़द के दाने) हों। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही हो। उसका एक पैर घर की चौखट के अंदर और दूसरा पैर बाहर हो।

इस तरफ चंपानगरी की राजकुमारी वसुमती, युद्ध के कारण अनाथ होकर बिक चुकी थी। कौशाम्बी के धनावह सेठ उसे अपनी बेटी मानकर अपने घर लाए और उसका नाम ‘चंदना’ रखा। चंदना के रूप और सद्गुणों को देखकर सेठ की पत्नी मूला सेठानी ईर्ष्या की आग में जल उठी। झूठी शंका के वश से मूला ने चंदना पर भयानक अत्याचार करने का निश्चय किया। उसने नाई को बुलाकर चंदना का

सिर मुंडवा दिया और उसके पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डाल दीं। चंदना को एक अंधेरी कोठरी में बंद कर दिया और तीन दिनों तक उसे भूखा-प्यासा रखा।

तीन दिन बाद जब बाहर से लौटे सेठ को सत्य का पता चला तो उनका हृदय काँप उठा। उन्होंने घर में खाने के लिए कुछ न होने के कारण, रोते हृदय से चंदना को सूपड़े में बचे हुए उड़द के बाकुले दे दिए। चंदना ने सोचा: "भले ही मैं इतने दिनों की भूखी हूँ, लेकिन पहले किसी साधु (मुनिराज) को व्होराने के बाद ही भोजन ग्रहण करूँगी"। उसकी अंतरात्मा की शुद्धि और भक्ति इतनी उच्च कोटि की थी कि स्वयं भगवान महावीर वहाँ पधार गए। प्रभु को देखकर चंदनबाला भगवान को व्होराने के लिए चौखट की तरफ दौड़ी। भगवान ने देखा कि उनके अभिग्रह की सभी शर्तें पूरी हो रही थीं, लेकिन एक कमी थी-चंदनबाला की आँखों में आँसू नहीं थे। इसलिए जब भगवान जाने के लिए मुड़े, तो यह देखकर चंदनबाला का हृदय भर आया और वह फूट-फूट कर रोने लगी। और भगवान ने देखा-उनका अभिग्रह पूर्ण हो चुका था! भगवान ने चंदनबाला के हाथों से उड़द के बाकुले ग्रहण किए और प्रभु की साढ़े पांच महीने के कठिन तपस्या का पारणा हुआ। उसी क्षण देवों ने आकाश से रत्नों की वर्षा की और देव-दुन्दुभि के नाद गूँज उठे। चंदनबाला के पैरों की बेड़ियाँ सोने के पायल में बदल गई और उसके बाल फिर से सुंदर हो गए। इस चमत्कार को देखकर राजा शतानीक और रानी मृगावती भी वहाँ दौड़े चले आए। चंदनबाला की पवित्रता को जानकर पूरा नगर उसके चरणों में झुक गया। भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद, चंदनबाला उनकी प्रथम शिष्या बनीं। वे 'आर्या चंदनबाला' के नाम से जानी गई और हजारों साध्वियों की प्रमुखा बनीं।

बोध : यह कथा हमें सीखाती है कि शंका सोने की लंका को भी जलाकर राख कर देती है, जबकि अटूट श्रद्धा और शुद्ध भाव हो तो स्वयं भगवान भी द्वार पर पधारते हैं। चंदनबाला का जीवन तप, शील (पवित्रता) और नि:स्वार्थ भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। मूला सेठानी ने केवल झूठी शंका के कारण घोर पाप किया जिसका फल उसे भुगतना पड़ा। शंका इंसान से भयानक आर्तध्यान और रौद्रध्यान करवाती है; जो हमें नरक की ओर ले जाता है। वहीं, चंदनबाला ने अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी अपनी पवित्रता और धैर्य को कभी नहीं खोया।

●●●

मौखिक कक्षा ८

सूत्र	: सकलार्हत्, स्नातस्या, संतिकरम्, अजितशांति पुनरावर्तन (सूत्र ७२ से ७७) बडी शान्ति (सूत्र ७६)	३५
अर्थ	: करेमि भंते और सामाइय वयजुत्तो सूत्र (शब्दार्थ)	१०
काव्य	: चैत्यवंदन: कल्पतरुवर कल्पसूत्र... स्तवन: सुणजो साजन... थोय: पुण्य का पोषण - ४ गाथा	१५
पच्चक्खाण	: नवकारशी, दिवसचरिम, पाणहार	१०
विधि	: देवसिअ प्रतिक्रमण की विधि	२०
	राजनगर प्रश्नोत्तरी : ८१ से ९०	१०
		१००

करेमि भंते सूत्र (सामायिक दंडक सूत्र) शब्दार्थ

करेमि - मैं करता हूँ
भंते ! - हे पूज्य भगवंत! / हे गुरुदेव!
सामाइयं - सामायिक
सावज्जं - पापकारी
जोगं - योग का
पच्चक्खामि - पच्चक्खाण करता हूँ
नियमं - नियम को
पज्जुवासामि - पर्युपासना करता हूँ – यानी सेवन करता हूँ।
दुविहं - दो प्रकार से
तिविहेणं - तीन प्रकार से
मणेणं - मन से
वायाए - वचन से
काएणं - काया से
न करेमि - स्वयं न करूँ
न कारवेमि - दूसरों से न करवाऊँ
तस्स - उस (पूर्व में किए गए पाप) से
पडिक्कमामि - पीछे हटता हूँ
निंदामि - आत्म-साक्षी से निंदा करता हूँ
गरिहामि - गुरु-साक्षी से विशेष रूप से निंदा करता हूँ
अप्पाणं - अपनी आत्मा को
वोसिरामि - मैं पाप प्रवृत्तियों से अलग करता हूँ

सामाइय वयजुत्तो सूत्र (सामायिक पारने का सूत्र) अर्थ

सामाइयवय - सामायिक के व्रत से
जुत्तो - सहित / युक्त
जाव - जब तक
मणे - मन में
होइ - हो / होता है
नियमसंजुत्तो - नियम से युक्त
छिन्नइ - छेदा जाता है / नष्ट होता है
असुहं - अशुभ
कम्मं - कर्म
सामाइअ – सामायिक
जत्तिआ वारा - जितनी बार
सामाइअंमि - सामायिक में
उ - और (पुनः)
कए - करने पर / किए जाने पर
समणो इव - साधु की तरह / साधु के समान
सावओ - श्रावक
हवइ - होता है
जम्हा - जिसके लिए
एएण - इस / उस
कारणेणं - कारण से
बहुसो- बहुत बार / बार-बार
कुज्जा - करना चाहिए

• • •

मौखिक कक्षा - ९

सूत्र :	अतिचार संपूर्ण (सूत्र ५७)	५०
काव्य :	प्रभु वीर का हालरडा / पालना	२०
पच्चक्खाण :	आयंबिल, नीवि, एकासणा, बियासणा, तिविहार - चउविहार उपवास	१०
कर्म :	१. ज्ञानावरणीय कर्म २. दर्शनावरणीय कर्म	२०
		१००

कर्म की परिभाषा और उसके भेद (कर्म का स्वरूप)

• **कर्म :** चारों गतियों (देव, मनुष्य, तिर्यंच और नर्क) में भटकती हुई यह आत्मा मिथ्यात्व आदि कारणों की वजह से कार्मण वर्गणाओं के जिस समूह को ग्रहण करती है, उसे 'कर्म' कहा जाता है। कर्म के मुख्य दो भेद हैं: घाती कर्म और अघाती

कर्म

(१) घाती कर्म : जो कर्म आत्मा के मूल गुणों जैसे-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग पर अपना प्रभाव डालते हैं और इन गुणों को क्षीण (कम या नष्ट) करते हैं, उन्हें घाती कर्म कहा जाता है। घाती कर्म के चार भेद हैं: ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म, अंतराय कर्म

(२) अघाती कर्म : जो कर्म आत्मा के मूल गुणों को नष्ट नहीं करते बल्कि पुद्गल, शरीर, इन्द्रियों आदि पर अपना प्रभाव डालते हैं, उन्हें अघाती कर्म कहा जाता है। अघाती कर्म के भी चार भेद हैं: नाम कर्म, गोत्र कर्म, वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म.

१. ज्ञानावरणीय कर्म : जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण पर आवरण (परदा) डालता है अर्थात् ज्ञानगुण को ढँकता है, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। यह आँख की पट्टी के समान है। जिस प्रकार आँख में देखने की शक्ति होने के बावजूद, आँख पर बंधी पट्टी वस्तु को देखने (बोध होने) में बाधा बनती है उसी प्रकार आत्मा में अनंत ज्ञानगुण होने पर भी ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान प्रकट होने में बाधक बनता है। जैसे-जैसे यह आवरण दूर होता है, वैसे-वैसे आत्मा का ज्ञानगुण प्रकट होता जाता है।

• **कर्म का बंध :** ज्ञान और ज्ञानी की निंदा, द्वेष तथा अपमान करने से; ज्ञानी के उपकारों को भूल जाने से, ज्ञानी पुरुषों के साथ अकारण झगड़ा करने से, साथ ही पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले के कार्य में बाधा (अंतराय) डालने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है।

• **कर्म का फल :** ज्ञानावरणीय कर्म के उदय के कारण जीवात्मा बहरा, मूँगा, मंदबुद्धि या कम बुद्धि वाला होता है। उसकी बुद्धि निर्मल नहीं होती और वह आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता-इत्यादि फल उसे भुगतने पड़ते हैं।

• ज्ञानावरणीय कर्म के पाँच (५) भेद हैं :

(१) मतिज्ञानावरणीय कर्म : पाँचों इन्द्रियों और मन के माध्यम से हमें जो ज्ञान होता है, उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं। इस मतिज्ञान को प्रकट होने से रोकने का काम जो कर्म करता है, उसे मतिज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। पूर्वजन्म की बातें याद आना (जातिस्मरण ज्ञान) भी मतिज्ञान का ही एक प्रकार है।

(२) श्रुतज्ञानावरणीय कर्म : शब्दों को सुनने, पढ़ने और लिखने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे 'श्रुतज्ञान' कहते हैं। इस श्रुतज्ञान को प्रकट होने से रोकने का काम जो कर्म करता है, उसे श्रुतज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

(३) अवधिज्ञानावरणीय कर्म : एक निश्चित मर्यादा (सीमा) के भीतर रहे हुए रूपी पदार्थों का जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसे 'अवधिज्ञान' कहते हैं। अवधिज्ञान को प्रकट होने से रोकने का कार्य अवधिज्ञानावरणीय कर्म करता है।

(४) मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म : ढ़ाई द्वीप में रहने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के भावों/विचारों को जो ज्ञान जानता है, उसे 'मनःपर्यवज्ञान' कहते हैं। मनःपर्यवज्ञान को रोकने का काम मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म करता है। जब तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं, तब देव उनके कंधे पर 'देवदुष्य' रखते हैं; उसी समय तीर्थंकर भगवंत को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है।

(५) केवलज्ञानावरणीय कर्म : विश्व के सभी कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) के और सभी क्षेत्रों के समस्त पदार्थों को एक ही समय में जिस ज्ञान द्वारा जाना और देखा जा सकता है, उसे 'केवलज्ञान' कहते हैं। केवलज्ञान को प्रकट होने से रोकने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है।

२. दर्शनावरणीय कर्म : जो कर्म आत्मा के दर्शनगुण (सामान्य बोध/देखने की शक्ति) पर आवरण डालता है, अर्थात् दर्शनगुण को ढँकता है उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। यह राजा के द्वारपाल के समान है। जिस प्रकार द्वारपाल राजा के दर्शन करने में बाधक बनता है उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म पदार्थ के सामान्य दर्शन या बोध में बाधक बनता है। जैन धर्म के अनुसार, आत्मा की श्रद्धा, विश्वास या समकित (सम्यक्त्व) को ढकने वाला और इन्द्रियों तथा आत्मा द्वारा देखे जाने वाले विषयों को रोकने वाला कर्म ही दर्शनावरणीय कर्म है।

• **कर्म का बंध :** गुणीजनों की निंदा या चुगली करने से; गुणी और ज्ञानी पुरुषों की अवहेलना (अपमान) करने से; कृतघ्न होने से (किसी का उपकार भूल जाने से); भगवान के वचनों में शंका-कुशंका करने से और धर्म साधना में अवरोध खड़ा करने से दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता है।

• **कर्म का फल :** दर्शनावरणीय कर्म के उदय के कारण जीवात्मा को आँखों से कम दिखाई देता है, अंधापन आता है, अनिद्रा का शिकार होना पड़ता है, या

फिर बैठे-बैठे और चलते-चलते भी नींद आने लगती है ऐसा जीव आत्मा का सच्चा दर्शन नहीं कर पाता-इत्यादि फल उसे भुगतने पड़ते हैं।

• दर्शनावरणीय कर्म के कुल ९ भेद हैं:

(जिसमें ४ भेद दर्शन के आवरण के और ५ भेद निद्रा (नींद) के हैं।)

(१) चक्षु दर्शनावरणीय कर्म: अंधापन, कानापन, मोतियाबिंद, ग्लोकोमा आदि आँख से संबंधित तकलीफें लाने का कार्य यह कर्म करता है।

(२) अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म: आँख के अलावा अन्य इन्द्रियों (जैसे कान, जीभ आदि) में दोष या अक्षमता पैदा करता है, जिससे जीव बहरा या मूँगा बनता है।

(३) अवधि दर्शनावरणीय कर्म: अवधिज्ञान के साथ जो अवधिदर्शन प्रकट होता है, उसे प्रकट होने से रोकने का काम यह कर्म करता है।

(४) केवल दर्शनावरणीय कर्म: केवलज्ञान के साथ प्रकट होने वाले केवलदर्शन को प्रकट होने से रोकने का कार्य यह कर्म करता है।

(५) निद्रा: हल्की आवाज़ या खटपट होते ही तुरंत नींद खुल जाए, वैसी अल्प नींद लाने वाला कर्म।

(६) निद्रा-निद्रा: झकझोरने (ज़ोर से हिलाने) पर ही जाग पाए वैसी बहुत गहरी नींद लाने वाला कर्म।

(७) प्रचला: बैठे-बैठे या खड़े-खड़े ही झोंके खिलाए और नींद ला दे, वैसा कर्म।

(८) प्रचला-प्रचला: घोड़े या बैल की तरह चलते-चलते भी सुला दे, वैसा कर्म।

(९) थिणद्धि : इस कर्म के उदय से मनुष्य दिन में सोचे हुए कार्य को रात में नींद में ही कर डालता है। इस अवस्था में उस व्यक्ति की शारीरिक शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है।

• • •

मौखिक कक्षा - १०

सूत्र	: स्नात्र पूजा संपूर्ण	३०
अर्थ	: जगचिंतामणि सूत्र, जं किंचि सूत्र (शब्दार्थ)	१०
विधि	: पाक्षिक, चउमासी प्रतिक्रमण विधि	२०

कर्म : ३. वेदनीय कर्म	२०
४. मोहनीय कर्म	
* जैन धर्म की मोनोपोली (एकाधिकार)	२०
	१००

जगचिंतामणि चैत्यवंदन (शब्दार्थ)

जगचिंतामणि - भव्य जीवों के लिए चिंतामणि रत्न के समान
जग-नाह - भव्य जीवों के नाथ
जगगुरु - सर्व लोक के हित का उपदेश देने वाले
जगरक्खण - छह जीव निकाय के रक्षक
जगबंधव - समान बोध वाले तथा संसार के सभी प्राणियों के भाई (बंधु)
जगसत्थवाह - मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले जीवों के सार्थवाह
जगभाव - षड्‌द्रव्य तथा नौ तत्वों के स्वरूप को प्रकट करने में
विअक्खण – विचक्षण/ चतुर
अट्ठावय - अष्टापद पर्वत पर
संठवियरूव - जिनकी प्रतिमाएँ (जिनबिंब) स्थापित की गई हैं
कम्मट्ठ - आठों कर्मों का
विणासण - नाश करने वाले
जिणवर - तीर्थंकर भगवंत
जयंतु - जयवंत होवें! / विजय प्राप्त करें!
अप्पडिहय - किसी के द्वारा नष्ट या पराजित न हो सके
सासण - शासन जिनका
कम्मभूमिहिं - कर्मभूमियों में (जहाँ मोक्ष मार्ग की साधना और कर्म की प्रधानता होती है) / जहाँ कर्म क्रियाशील है, ऐसी
कम्मभूमिहिं - कर्मभूमि के क्षेत्रों में
पढमसंघयणी - प्रथम संघयण वाले
उक्कोसय - उत्कृष्ट रूप से (अधिक से अधिक)
सत्तरिसय - एक सौ सत्तर
जिणवराण - तीर्थंकर भगवंतों को
विहरंत - विचरते हुए
लब्भइ - प्राप्त होते हैं / पाते हैं
नवकोडिहिं - नौ क्रोड / करोड़
केवलीण - केवली भगवंत
कोडिसहस्स - हजार क्रोड / करोड़
नव - नौ
साहु - साधुओ / साधु भगवंत
गम्मइ - जानते हैं / जाने जाते हैं
संपइ - वर्तमान काल में
जिणवर - तीर्थंकर भगवंत
वीस - बीस

मुणि - मुनिओ / मुनिराज
बिहुं - दो
वरनाण - उत्तम ज्ञान वाले (श्रेष्ठ केवलज्ञान वाले)
समणह - श्रमणों / साधुओं को
कोडि - क्रोड / करोड़
सहस्सदुअ - दो हजार
थुणिज्जइ - हम स्तुति करते हैं
निच्चविहाणि - नित्य प्रातःकाल
जयउ सामिय - हे स्वामी! आपकी जय हो! / जयवंत होवें
रिसह - ऋषभदेव भगवान
सत्तुंजि - शत्रुंजय पर्वत पर
उज्जिंति - श्री गिरनार पर्वत पर
पहु - प्रभु
नेमिजिण - नेमिनाथ भगवान
वीर - श्री महावीर भगवान
सच्चउरि - सत्यपुरी (सांचौर) नगर के
मंडण - आभूषण रूप
भरूअच्छहिं - भरूच में
मुणिसुव्वय - मुनिसुव्रतस्वामी भगवान
महुरि - मुहरि गाँव में
पास - श्री पार्श्वनाथ भगवान
दुह – दुःख
दुरिअ – पाप के
खंडण - खंडन करने वाले (नष्ट करने वाले)
अवर - अन्य / दूसरे
विदेहिं - पाँच महाविदेह क्षेत्र में
तित्थयरा - तीर्थंकर भगवंत
चिहुं - चार
दिसि - दिशाओं में
विदिसि - विदिशाओं में (कोणों में)
जिंकेवि - जो कोई भी
तीअ - अतीत (भूतकाल) संबंधी
अणागय - अनागत (भविष्यकाल) संबंधी
संपइअ - वर्तमान काल संबंधी
वंदुं - मैं वंदना करता/करती हूँ
जिण - जिनेश्वरों को
सव्वेवि - सभी को भी / सर्व को भी
सत्ताणवइ - सत्तानवे
सहस्सा - हजार
लक्खा - लाख
छप्पन - छप्पन
अट्ठ - आठ
कोडिओ - क्रोड / करोड़
बत्तीससय - बत्तीस सौ
बासिआइं - ब्यासी
तिअलोए - तीन लोक में चेइए - चैत्यों को
वंदे - मैं वंदना करता/करती हूँ
पनरस - पंद्रह
कोडिसयाइं - सौ करोड़ (सौ कोटि)
बायाल - बयालीस
लक्ख – लाख
अडवन्ना - अट्ठावन
छत्तीस - छत्तीस

सहस – हजार	बिंबाइं - बिंबों को
असिइं - अस्सी	पणमामि - मैं प्रणाम (भावपूर्वक नमस्कार) करता/करती हूँ
सासय - शाश्वत	

जं किंचि सूत्र (शब्दार्थ)

जं किंचि - जो कोई भी	जाइं - जितने भी
नामतित्थं - नामरूप तीर्थ हैं	जिणबिंबाइं - जिनबिंब
सग्गे - स्वर्गलोक में	ताइं - उन
पायालि - पाताललोक में	सव्वाइं - सभी को / सर्व को
माणुसेलोए - मनुष्यलोक में	वंदामि - मैं वंदन करता/करती हूँ

कर्म की परिभाषा और उसके भेद (कर्म का स्वरूप)

३. वेदनीय कर्म : इंद्रियजन्य या मनोजन्य भौतिक सुख-दुःख का जो अनुभव कराए, वह वेदनीय कर्म है। उदाहरण: मधु-लिप्त तलवार की धार, यह कर्म मधु-लिप्त (शहद से सनी हुई) तलवार की धार के समान है। यदि तलवार की धार पर शहद लगाया गया हो और कोई उसे चाटे, तो पहले उसे मीठास का सुखद अनुभव होता है लेकिन तुरंत ही जीभ कट जाने से तीव्र दुःख और वेदना का अनुभव होता है। यह कर्म जीव को सुख और दुःख, दोनों का अनुभव कराता है।

वेदनीय कर्म २ प्रकार का होता है:

१. शाता वेदनीय कर्म (सुख का अनुभव कराने वाला)

२. अशाता वेदनीय कर्म (दुःख का अनुभव कराने वाला)

- **कर्म का बंध :** संसार के सभी जीवों पर दया और करुणा करने से, दुःखी जीवों के दुःखों में सहभागी बनने से और उनके दुःखों को दूर करने से 'शाता वेदनीय कर्म' का बंध होता है। जीवों को त्रास और संताप देने से तथा दूसरों के दुःखों को देखकर खुश होने से 'अशाता वेदनीय कर्म' बंधता है।
- **कर्म का फल :** इस कर्म के उदय से जीवात्मा को संसार में मनचाहे और मनपसंद भोगोपभोग (अनुकूल साधन, सुख-सुविधाएँ) प्राप्त होते हैं। इस कर्म के उदय के कारण जीव को दरिद्रता, शारीरिक-मानसिक रोग और अनेक प्रकार के दुःख सहन करने पड़ते हैं।

श्री राजनगर जैन ज्ञानमंजरी

४. मोहनीय कर्म : जो कर्म जीव को मूढ़ (अज्ञानी) बनाकर हित और अहित (क्या सही है और क्या गलत) का विवेक न होने दे, वह मोहनीय कर्म है।

उदाहरण: यह कर्म मदिरापान (शराब के नशे) के समान है। जिस प्रकार मदिरा के नशे में व्यक्ति अपना होश-हवास भूल जाता है, ठीक उसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय से जीव हित-अहित के विवेक का होश भूल जाता है। इस कर्म के कारण जीवात्मा आत्म-भान भूल जाती है और क्षणभंगुर भोग-विलास में आसक्त हो जाती है। संक्षेप में, आत्मा को विकृत और मूढ़ बनाने वाले कर्म को मोहनीय कर्म कहते हैं।

धर्म के विषय में अनेक प्रकार की शंकाएँ और कुशंकाएँ पैदा करने का काम भी यही मोहनीय कर्म करता है। आठों कर्मों में यह मोहनीय कर्म सबसे भयंकर है।

इसे सभी कर्मों का 'राजा' कहा जाता है। इसी के सहारे बाकी के कर्म जीव को चारों गतियों में भटकाते हैं।

- मोहनीय कर्म के मुख्य रूप से २ भेद हैं:

  १. दर्शन मोहनीय कर्म २. चारित्र मोहनीय कर्म।

१. दर्शन मोहनीय कर्म : परमात्मा की वाणी (वचनों) के प्रति श्रद्धा उत्पन्न न होने देना या यदि श्रद्धा उत्पन्न हो भी जाए तो शंकाओं के द्वारा उसे नष्ट कर देना-यह दर्शन मोहनीय कर्म का कार्य है।

इसके ३ उप-प्रकार हैं: अ. सम्यक्त्व मोहनीय

ब. मिथ्यात्व मोहनीय, क. मिश्र (सम्यक्-मिथ्यात्व) मोहनीय

२. चारित्र मोहनीय कर्म : परमात्मा की वाणी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाने पर भी, जीव को उस श्रद्धा के अनुसार आचरण न करने देना-यह चारित्र मोहनीय कर्म का कार्य है। चारित्र मोहनीय के २ मुख्य प्रकार हैं:

अ. कषाय मोहनीय : इसके अंतर्गत क्रोध, मान, माया और लोभ से उत्पन्न होने वाले १६ भेद आते हैं।

ब. नोकषाय मोहनीय : इसके अंतर्गत हास्य, रति, अरति आदि से उत्पन्न होने वाले ९ भेद आते हैं। इस प्रकार चारित्र मोहनीय के कुल 16 + 9 = 25 उप-

प्रकार होते हैं।

- दर्शन मोहनीय कर्म के ३ और चारित्र मोहनीय कर्म के २५ उप-भेद होते हैं। इस प्रकार मोहनीय कर्म के कुल मिलाकर 3 + 25 = 28 उत्तर प्रकृतियाँ हैं।
- **कर्म का बंध :** यह कर्म निम्नलिखित कारणों से बंधता है: तीव्र रूप से कषाय-क्रोध, मान (अहंकार), माया (कपट) और लोभ करने से। धर्म के नाम पर अधर्म का आचरण करने से। अनाचार, दुराचार और व्यभिचार करने आदि से।
- **कर्म का फल :** इस कर्म के उदय के कारण जीवात्मा मोहांध , रागांध और विषयासक्त बन जाती है। जीव ईर्ष्यालु, झगड़ालू, मायावी (कपटी) और दंभी बन जाता है। वह बिना किसी कारण के या किसी कारण से हमेशा भयभीत और शोककुल (दुःखी) रहता है।

जैन धर्म की मोनोपोली (एकाधिकार)

आज के इस आधुनिक युग में विज्ञान हमें केवल सुख-सुविधाएँ दे सकता है लेकिन सच्चा 'सुख' और 'शांति' तो जीवन जीने की कला में ही समाहित है। हजारों वर्ष पुराने जैन धर्म के सिद्धांत आज केवल धार्मिक मान्यताएँ मात्र नहीं हैं, बल्कि विज्ञान और मनोविज्ञान का एक अद्भुत संगम हैं। जैन धर्म की 'मोनोपोली' (एकाधिकार) सत्ता या संपत्ति पर नहीं बल्कि नीचे दिए गए सिद्धांतों पर है। हमें जैन धर्म के सिद्धांतों को केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि एक "Life Management Tools" (लाइफ मैनेजमेंट टूल्स)' के रूप में देखने की आवश्यकता है।

१. अहिंसा : अहिंसा का अर्थ केवल 'न मारना' जैसा कोई बंधन नहीं है बल्कि यह सह-अस्तित्व का विज्ञान है।

विज्ञान: संसार के प्रत्येक जीव में पीड़ा (दर्द) का अनुभव करने की क्षमता होती है। जब प्राणियों पर हिंसा होती है, तब भय और दर्द के कारण उनके भीतर पैदा होने वाले 'विषाक्त तत्व' (Toxic elements) मानव शरीर और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं।

मनोविज्ञान: हृदय में करुणा और दया का भाव होने से व्यक्ति का मानसिक तनाव कम होता है और उसकी भावनात्मक बुद्धिमत्ता में वृद्धि होती है।

प्रेरक उदाहरण: पशुओं के प्रति भगवान नेमिनाथ की संवेदनशीलता (जिसके कारण उन्होंने विवाह के मंडप से लौटकर दीक्षा ले ली) और एक पक्षी के प्राण बचाने के लिए मेतारज मुनि का आत्म-बलिदान; यह साबित करता है कि व्यक्तिगत सुख की तुलना में 'जीवदया' और 'स्वार्थ का त्याग' हमेशा सर्वोपरि है।

आधुनिक संदर्भ: "अहिंसा परमो धर्मः" के सूत्र को जैन धर्म ने जितनी सूक्ष्मता (गहराई) से समझाया है, उतना विश्व के किसी अन्य दर्शन में देखने को नहीं मिलता। जैन धर्म में 'छह काय के जीवों' (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीव) की रक्षा का उपदेश है, जो वास्तव में आज के आधुनिक 'पर्यावरण संतुलन' को बचाने का ही विज्ञान है।

२. आज्ञा : आज्ञा आत्मा को परम स्वास्थ्य और आत्म-अनुशासन की ओर ले जाने वाला मार्गदर्शन है।

विज्ञान: विज्ञान कहता है कि सूर्यास्त के बाद मानव शरीर की जठराग्नि मंद पड़ जाती है। प्रभु द्वारा दी गई 'चौविहार' (सूर्यास्त के बाद भोजन न करने) की आज्ञा वास्तव में आधुनिक 'Intermittent Fasting (इंटरमिटेंट फास्टिंग') ही है, जो कैंसर और मधुमेह (Diabetes) जैसी बीमारियों से हमारी रक्षा करती है।

मानसिक अनुशासन: जब हम गुरु या तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, तब हमारा अहंकार पिघल जाता है। यह अनुशासन जीवन में मानसिक शांति और स्थिरता लाता है।

प्रेरक उदाहरण: गौतम स्वामी के पास अनंत लब्धियाँ होने के बावजूद, उन्होंने हमेशा भगवान महावीर की आज्ञा को ही सर्वोपरि माना। यही अनन्य श्रद्धा और अहंकार का विसर्जन उन्हें केवलज्ञान तक ले गया।

आधुनिक संदर्भ: आज के युग में स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता बढ़ रही है, ऐसे समय में आज्ञा का पालन प्रासंगिक है। जैन दर्शन में आज्ञा का अर्थ गुलामी नहीं, बल्कि 'सुरक्षा' है। जिस प्रकार ट्रैफिक के नियमों का पालन करना हमारी अपनी भलाई के लिए है, उसी प्रकार वीतराग प्रभु की आज्ञा का पालन करना संसार के संघर्षों से बचने और आत्मा के उद्धार के लिए 'ट्रैफिक गाइडलाइंस' के समान है।

३. अनेकांतवाद और स्याद्वाद : जैन दर्शन का अनेकांतवाद केवल एक सिद्धांत नहीं है बल्कि आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से सत्य को समझने की सर्वोच्च पद्धति है। यदि अनेकांतवाद 'विचार' है, तो स्याद्वाद 'संवाद की कला' है।

विज्ञान: आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत (Theory of Relativity) की तरह अनेकांतवाद सिखाता है कि सत्य देखने वाले के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। विज्ञान के 'नियम और शर्तें लागू' की तरह स्याद्वाद सिखाता है कि कोई भी कथन किसी विशेष अपेक्षा से ही सही हो सकता है

मनोविज्ञान: दूसरों के विचारों को स्वीकार करने की क्षमता मानसिक तनाव को कम करती है और भावनात्मक बुद्धिमत्ता को बढ़ाती है। 'स्यात्' (शायद/कदाचित्) शब्द का प्रयोग हमारी वाणी में विनम्रता लाता है।

प्रेरक उदाहरण: प्रभु ने एक कथा के माध्यम से इसे बहुत सुंदर तरीके से समझाया है। जब छह अंधे व्यक्ति एक हाथी के अलग-अलग अंगों को छूते हैं, तो वे हाथी को खंभा, दीवार या रस्सी मान लेते है। वे अपनी-अपनी जगह सही हैं लेकिन उनका सत्य अधूरा है। पूर्ण सत्य तो तभी समझ आता है जब पूरे हाथी को देखने की समग्र दृष्टि मिले। यह कहानी हमें सीखाती है कि पूर्ण सत्य तक पहुँचने के लिए हर पक्ष को समझना अनिवार्य है।

आधुनिक संदर्भ: आज के सोशल मीडिया और वैचारिक कट्टरता के युग में यह एक 'ग्लोबल सॉल्यूशन' (वैश्विक समाधान) है। यह 'मैं ही सही हूँ' के अहंकार को तोड़कर 'संवाद' का मार्ग खोलता है। अनेकांतवाद हमें 'ओपन माइंड'(खुले विचारों वाला दिमाग) रखकर हर पहलू को समझने की दृष्टि देता है, जो वैश्विक शांति के लिए अनिवार्य है।

४. माध्यस्थ भाव : जैन दर्शन में 'माध्यस्थ भाव' का अर्थ है-किसी के भी प्रति राग (आसक्ति) या द्वेष (नफरत) रखे बिना 'स्थितप्रज्ञ' बने रहना। यह आधुनिक मनोविज्ञान और विज्ञान के अनुसार सुख की चाबी है।

विज्ञान: जब हम किसी पर गुस्सा या द्वेष करते हैं, तो हमारे मस्तिष्क में तनाव बढ़ता है। माध्यस्थ भाव मस्तिष्क को शांत रखकर हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

मनोविज्ञान: मनोविज्ञान के अनुसार किसी परिस्थिति को 'जज' करने के

बजाय केवल उसका 'अवलोकन' करने से भावनात्मक उथल-पुथल को रोका जा सकता है। जहाँ परिस्थिति को बदलना संभव न हो, वहाँ अपनी मनःस्थिति को बदल लेना ही सच्चा माध्यस्थ भाव है।

प्रेरक उदाहरण: जब विषैले सर्प चंडकौशिक ने भगवान महावीर को डंसा, तब प्रभु ने उस पर क्रोध करने के बजाय 'माध्यस्थ भाव' रखा। प्रभु की इस परम शांति ने उस भयंकर सर्प का हृदय परिवर्तन कर दिया।

आधुनिक संदर्भ: सुख में बहुत अधिक अभिमान न करना और दुःख में हिम्मत न हारना; इस स्थिरता के कारण व्यक्ति जीवन में बेहतर निर्णय ले सकता है। बाहरी दुनिया चाहे कितनी भी अशांत हो यदि आप भीतर से तटस्थ हैं तो आपकी शांति कोई नहीं छीन सकता। 'माध्यस्थ भाव' का अर्थ हार मान लेना या भाग्य के भरोसे छोड़ देना (भाग्यवाद) नहीं है बल्कि यह तो मन को मजबूत रखने की एक कला है।

५. अपरिग्रह : जैन दर्शन का 'अपरिग्रह' केवल भौतिक वस्तुओं का त्याग नहीं है बल्कि वस्तुओं के प्रति रहने वाली 'ममत्व वृत्ति' (आसक्ति) का त्याग है।

विज्ञान: विज्ञान की दृष्टि से यह सिद्धांत पृथ्वी के सीमित संसाधनों का संरक्षण करके ग्लोबल वार्मिंग जैसी पर्यावरण की बड़ी समस्याओं को रोकता है।

मनोविज्ञान: मनोविज्ञान के अनुसार, अत्यधिक वस्तुओं का संग्रह मानसिक बोझ और चिंता को बढ़ाता है, जबकि अपरिग्रह 'लेस इज मोर' (कम ही अधिक है) के मंत्र द्वारा मन को शांति और वैचारिक स्पष्टता देता है

प्रेरक उदाहरण: जैन साधुओं का अत्यंत सरल, अपरिग्रही और संपत्ति-विहीन त्यागी जीवन यह प्रमाणित करता है कि सच्चा सुख वस्तुओं को 'इकट्ठा करने' में नहीं बल्कि उन्हें 'त्यागने' में है।

आधुनिक संदर्भ: आज के संदर्भ में, आवश्यकता और लालच के बीच का अंतर समझकर अपरिग्रह अपनाने वाला व्यक्ति दिखावे के खर्चों से बचकर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करता है। इस प्रकार, अपरिग्रह जमाखोरी को छोड़कर संतोषपूर्वक जीने का सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है।

निष्कर्ष : तीर्थंकर परमात्मा के सिद्धांत हजारों वर्षों के बाद आज भी आधुनिक

विज्ञान की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरे हैं। यह केवल एक धर्म नहीं है, बल्कि २१वीं सदी में जीने का एक 'Advanced Science' (एडवांस्ड साइंस) और 'Future Ready Survival Kit' (फ्यूचर रेडी सर्वाइवल किट) है। जब जीवन में उलझनें हों, रिश्तों में दरार पड़ रही हो या मानसिक शांति दांव पर लगी हो, तब जैन दर्शन के ये सिद्धांत मार्गदर्शक बनकर हर समस्या का सटीक समाधान देते हैं। यह सुख, शांति और सफलतापूर्वक जीने की सच्ची कला है।

- **अहिंसा:** यह हमारे शरीर, मन और पूरी पृथ्वी को प्रेम के धागे से जोड़ती है।
- **आज्ञा:** यह आत्मा की रक्षा करने वाली 'सेफ्टी गाइडलाइन' है, जो हमें निरोगी शरीर और शांत मन देती है।
- **अनेकांतवाद:** यह खुले दिमाग का विज्ञान है, जो हमारे भीतर से जिद को दूर कर उदारता लाता है।
- **माध्यस्थ भाव:** यह बुद्धि और भावनाओं का संतुलन है; यह हमें गुस्से में लड़ने के बजाय शांति से जवाब देना सीखाता है।
- **अपरिग्रह:** यह इच्छाओं को नियंत्रण में रखने का विज्ञान है, जो हमें वस्तुओं का मालिक बनाता है, उनका गुलाम नहीं।

संक्षेप में, जैन धर्म की यह 'मोनोपोली' आधुनिक मनुष्य के लिए एक शक्तिशाली 'Survival Kit' और 'Master Key' (सफलता की कुंजी) है। अब सुखी जीवन का ताला खोलने की जिम्मेदारी आपकी है!

● ● ●

मौखिक कक्षा ११

सूत्र	: भक्तामर स्तोत्र (सूत्र ५८)	४०
अर्थ	: नमुत्थुणं से नमोऽर्हत् सूत्र (शब्दार्थ)	३०
कर्म	: ५. आयुष्य कर्म	३०
	६. नाम कर्म	
	७. गोत्र कर्म	
	८. अंतराय कर्म	
		१००

नमुत्थुणं सूत्र (शब्दार्थ)

नमुत्थुणं – नमस्कार हो
अरिहंताणं – अरिहंतों को
भगवंताणं – भगवानों को
आइगराणं – द्वादशांगी की आदि (शुरुआत) करने वाले को
तित्थयराणं – धर्मतीर्थ को चलाने वाले (प्रवर्तक) को
सयंसंबुद्धाणं – अपने आप (स्वयं) तत्व को जानने वाले को
पुरिसुत्तमाणं – पुरुषों में उत्तम को
पुरिससिहाणं – पुरुषों में सिंह के समान पराक्रमी को
पुरिस – पुरुषों में
वर – प्रधान (श्रेष्ठ)
पुंडरीआणं – कमल के समान निर्लेप को
गंधहत्थीणं – गंधहस्ती के समान सामर्थ्यवान को
लोगुत्तमाणं – लोक में उत्तम को
लोगनाहाणं – लोकों के नाथ को
लोगहियाणं – लोक का हित करने वाले को
लोगपईवाणं – लोक में दीपक के समान प्रकाश करने वाले को
लोगपज्जोअगराणं – लोक में उद्योत (उजाला) करने वाले को
अभयदयाणं – अभयदान देने वाले को
चक्खुदयाणं – अंतर-चक्षु देने वाले को
मग्गदयाणं – मोक्ष मार्ग देने वाले को
सरणदयाणं – शरण देने वाले को
बोहिदयाणं – बोधिबीज देने वाले को
धम्मदयाणं – धर्म देने वाले को
धम्मदेसयाणं – धर्म का उपदेश करने वाले को
धम्मनायगाणं – धर्म के नायक को
धम्मसारहीणं – धर्म के सारथी को
धम्मवर – धर्म रूपी
चाउरंत – चार गति का अंत करने वाले को
चक्कवट्टीणं – धर्म के चक्रवर्ती को
अप्पडिहय – जो किसी से भी नष्ट न हो सके, वैसे
वरनाण – केवलज्ञान को
दंसण – केवलदर्शन को
धराणं – धारण करने वाले को
वियट्ट – जो निवृत्त हुए हैं
छउमाणं – छद्मस्थ अवस्था से उसे
जिणाणं – जीतने वाले को
जावयाणं – जिताने वाले को
तिन्नाणं – तैरने वाले को
तारयाणं – तारने वाले को
बुद्धाणं – तत्त्व को जानने वाले को
बोहयाणं – बोध देने वाले को
मुत्ताणं – स्वयं कर्मों से मुक्त हुए को

मोअगाणं – दूसरों को कर्मों से मुक्त कराने वाले को	नमो – नमस्कार हो
सव्वन्नूणं – सर्वज्ञों को	जिणाणं – जिनेश्वरों को
सव्वदरिसीणं – सर्वदर्शियों को	जिअभयाणं – जिन्होंने इहलोक आदि सातों भयों को जीत लिया है, ऐसे भगवंतों को
सिव – उपद्रव रहित	जे अ – और जो
अयल – अचल (स्थिर)	अईआ – अतीत काल में
अरुअ – रोग रहित	सिद्धा – सिद्ध हुए
अणंत – अनंत	भविस्संति – सिद्ध होंगे
अक्खय – अक्षय	अणागए काले – अनागत काल में
अव्वाबाह – बाधा रहित	संपइ अ – और जो वर्तमान काल में
अपुणरावित्ति – जहाँ से दोबारा जन्म न लेना पड़े, ऐसा	वट्टमाणा – विद्यमान हैं
सिद्धिगइनामधेयं – सिद्धगति नाम के	सव्वे – उन सभी (द्रव्य जिनों) को
ठाणं – स्थान को	तिविहेण – मन, वचन और काया से
संपत्ताणं – प्राप्त हुए को	वंदामि – मैं वंदना करता हूँ

जावंति चेइआइं सूत्र – शब्दार्थ

जावंति – जितने	ताइं – उनको (उन्हें)
चेइआइं – चैत्य हैं	वंदे – मैं वंदना करता हूँ
उड्ढे अ – ऊर्ध्वलोक में	इह – यहाँ
अहे अ – अधोलोक में	संतो – होते हुए
तिरिअलोए – तिर्यक् लोक (मध्यलोक) में	तत्थ – वहाँ
सव्वाइं – सभी को	संताइं – रहे हुए को

जावंत केवि साहू सूत्र – शब्दार्थ

जावंत – जितने	भरह – भरत क्षेत्र में
केवि – कोई भी	ऐरवय – ऐरावत क्षेत्र में
साहू – साधु (साधुगण)	महाविदेहे – महाविदेह क्षेत्र में

सव्वेसिं – सभी को	तिविहेण – मन, वचन और काया से
तेसिं – उनको (उन्हें)	तिदंड – तीन दंड से
पणओ – नमन किया	विरयाणं – निवृत्त हुए को

नमोऽर्हत् (संक्षिप्त पंच परमेष्ठी नमस्कार) सूत्र – शब्दार्थ

नमो – नमस्कार हो	आचार्य – आचार्य को
अर्हत् – अरिहंत को	उपाध्याय – उपाध्याय को
सिद्ध – सिद्ध को	सर्वसाधुभ्यः – सर्व साधुओं को

कर्म की परिभाषा और उसके भेद (कर्म का स्वरूप)

५. आयुष्य कर्म : जीवन का निर्माण करने वाले पुद्गल (जड़ तत्वों) को आयुष्य कर्म कहते हैं। यह कर्म जेल (कैदखाने) के समान है। जिस प्रकार जेल में बंद इंसान अपनी इच्छा के अनुसार आ जा नहीं सकता, उसी प्रकार इस कर्म के कारण जीवात्मा देह रूपी कैदखाने में बंद रहती है। आयुष्य कर्म के चार भेद हैं: नरक आयु, तिर्यंच आयु, मनुष्य आयु और देव आयु।

बंध के कारण और उसका फल:

- **नरक गति:** जिन कार्यों में हर पल जीवों की हिंसा होती हो, ऐसे व्यापार-धंधे करने से, संग्रहखोरी (कालाबाजारी) करने से, मांसाहार करने से और पंचेंद्रिय जीवों की हत्या करने से जीवात्मा नरक गति में जाती है।
- **तिर्यंच गति:** कपट के साथ झूठ बोलने से, विश्वासघात करने से और गलत नाप-तोल करने से जीवात्मा तिर्यंच (पशु-पक्षी) गति में जाती है।
- **मनुष्य गति:** स्वभाव से निष्कपटी (सरल), स्वभाव से विनीत (नम्र), दयालु और ईर्ष्या रहित होने पर जीव मनुष्य गति पाता है।
- **देव गति:** दीक्षा लेकर संयम का पालन करने से, गृहस्थ जीवन में बारह व्रतों का पालन करने से, तप करने से और पराधीनता में भी समताभाव से दुःख सहन करने से जीवात्मा देवगति में जाती है।

६. नाम कर्म : जिस पुद्गल के निमित्त से जीवन की विविध सामग्रियां (शारीरिक संरचना) मिलती हैं, उसे नाम कर्म कहते हैं। यह कर्म चित्रकार के समान है।

जिस प्रकार चित्रकार पेंसिल और ब्रश से तरह-तरह के चित्र बनाता है उसी प्रकार इस कर्म के कारण जीवात्मा विभिन्न रूप और आकार के शरीर को प्राप्त करती है। नाम कर्म के दो मुख्य प्रकार कहे गए हैं: शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम कर्म। नाम कर्म के कुल १०३ उत्तर भेद हैं।

- **बंध के कारण:** मन, वचन और काया को सरल तथा पवित्र रखने से एवं सभी के साथ प्रेम और मित्रतापूर्ण व्यवहार करने से शुभ नाम कर्म बंधता है। इसके विपरीत, मन, वचन और काया को कुटिल (टेढ़ा) तथा अपवित्र रखने से और सभी के साथ क्लेश-झगड़ा करने से अशुभ नाम कर्म बंधता है।
- **कर्म का फल:** शुभ नाम कर्म से: मनपसंद भोगोपभोग, यश (कीर्ति), रूप, आरोग्य आदि सुख मिलते हैं। अशुभ नाम कर्म से: अभाव, दुर्भाव, पीड़ा, बदनामी, बीमारी आदि अनेक दुखों का सामना करना पड़ता है।

७. गोत्र कर्म : जीव को ऊँचे या नीचे गोत्र में जन्म दिलाकर समाज में उच्चता या निम्नता प्राप्त कराने वाले कर्म को गोत्र कर्म कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं: उच्च गोत्र और नीच गोत्र। जिस कर्म के प्रभाव से उच्च गोत्र मिले, वह उच्च गोत्र कर्म है और जिसके प्रभाव से नीच गोत्र मिले, वह नीच गोत्र कर्म है। यह कर्म कुम्हार के समान है। जैसे कुम्हार एक ही मिट्टी और एक ही चाक से अलग-अलग बर्तन बनाता है - कोई देव-पूजा का कलश बनता है, तो कोई अपवित्र वस्तुएं रखने का पात्र बनता है। वैसे ही गोत्र कर्म भी प्रत्येक आत्मा को उसके बांधे हुए कर्मों के आधार पर जाति, कुल, बल आदि की उच्चता या निम्नता दिलाकर समाज में पूजनीय (उच्च गोत्र) या निंदनीय (नीच गोत्र) बनाता है।

- **बंध के कारण:** जाति, कुल, बल, रूप, तप, ज्ञान, लाभ और ऐश्वर्य - इनमें से किसी एक का या एक से अधिक का अभिमान (घमंड) करने से नीच गोत्र कर्म बंधता है और ऐसा अभिमान न करने से (नम्र रहने से) उच्च गोत्र कर्म बंधता है।
- **कर्म का फल:** उच्च गोत्र कर्म से सुखी, संपन्न और संस्कारी परिवार में जन्म मिलता है। साथ ही रूप, बल, समृद्धि आदि उत्तम सामग्रियां प्राप्त होती हैं। नीच गोत्र कर्म से इसके विपरीत फल मिलता है, अर्थात् नीचे (हलके) कुल में जन्म मिलता है, दरिद्रता (गरीबी), रोग और कुरूपता आदि प्राप्त होते हैं।

• **अंतराय कर्म :** आत्मा की क्रियात्मक शक्ति में अवरोध (रुकावट) पैदा करने वाले कर्म को अंतराय कर्म कहते हैं। जो कर्म जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग या

वीर्य (पराक्रम) प्रकट करने में बाधक बने, वह अंतराय कर्म है।

यह राजा के भंडारी (खजांची) के समान है। जैसे राजा किसी याचक को दान देने की इच्छा करे, लेकिन भंडारी उसमें विघ्न डाल दे, तो राजा की इच्छा पूरी नहीं हो पाती; वैसे ही अंतराय कर्म दान आदि क्रियाओं में विघ्न डालता है। आत्मा में अनंत शक्ति और गुण मौजूद हैं, लेकिन इस कर्म के कारण वे प्रकट नहीं हो पाते। इसके ५ प्रकार हैं: दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

- **बंध के कारण:** यदि कोई दान दे रहा हो तो उसमें बाधा डालने से, किसी को लाभ मिल रहा हो तो उस लाभ को रोकने से, किसी को खान-पान करने से रोकने से और धर्म-ध्यान करने में बाधा डालने से यह अंतराय कर्म बंधता है।
- **कर्म का फल:** इस कर्म के उदय के कारण जीवात्मा चाहकर भी दान नहीं दे पाता, लाभ प्राप्त नहीं कर पाता, भोग और उपभोग की वस्तुओं का आनंद नहीं ले पाता और न ही धर्म की आराधना कर पाता है।

निष्कर्ष : इन ८ कर्मों और उनके उप-कर्मों से आत्मा जब तक जुड़ी और बंधी रहती है, तब तक जीवात्मा का संसार चक्र चलता ही रहता है। लेकिन मनुष्य अपनी आत्मा को कर्मों से मुक्त भी कर सकता है। तप, त्याग, वैराग्य, ज्ञान, ध्यान और जप आदि धर्म-साधना करके वह अपनी आत्मा को निर्मल और मोह-रहित बना सकता है। धर्म की उत्कृष्ट और उग्र साधना से समस्त कर्मों का क्षय (नाश) करके जीवात्मा मुक्त और बुद्ध हो सकती है। जब जीवात्मा समस्त कर्मों का समूल नाश कर देती है, तब वह स्वयं परमात्मा बन जाती है।

● ● ●

मौखिक कक्षा - १२

सूत्र	: तिजयपहुत्त स्तोत्र, नमिऊण स्तोत्र (सूत्र ५९, ६०)	४०
अर्थ	: उवसग्गहरं से अरिहंत चेइआणं सूत्र (शब्दार्थ)	३०
विधि	: चौदह नियम धारण करने की विधि	१०

पदार्थ: भक्ष्याभक्ष्य भाग - १	२०
	१००

उवसग्गहरं सूत्र (शब्दार्थ)

उवसग्ग – उपसर्ग (विघ्न-बाधा) को
हरं – हरने वाले (दूर करने वाले)
पासं – पार्श्व नाम का यक्ष जिसे प्राप्त है, ऐसे
पासं – पार्श्वनाथ भगवान को
वंदामि – मैं वंदना करता हूँ
कम्मघण – कर्मों के समूह से
मुक्कं – मुक्त हुए
विसहर – विषधर (जहरीले) सर्प के
विस – विष (जहर) को
निन्नासं – नष्ट करने वाले
मंगल – मंगल और
कल्लाण – कल्याण के
आवासं – आवास (घर) रूप हैं जो
विसहरफुलिंगमंतं – विषधर स्फुलिंग नामक महामंत्र को
कंठे – कंठ में (गले में)
धारेइ – धारण करता है
जो – जो
सया – हमेशा (सदा)
मणुओ – मनुष्य
तस्स – उसके
गह – दुष्ट ग्रह
रोग – शारीरिक रोग
मारी – मरकी (महामारी/प्लेग आदि संक्रामक रोग)
दुट्ठ – अशुभ या खराब
जरा – ज्वर (बुखार)
जंति – प्राप्त होते हैं
उवसामं – उपशम को (शान्ति को)
विट्ठउ – रहो (दूर रहे)
दुरे – दूर
मंतो – मन्त्र
तुज्झ – आपका
पणामोवि – नमस्कार भी
बहुफलो – बहुत फल देने वाला
होइ – होता है
नर – मनुष्य
तिरिएसुवि – तिर्यंचों में भी
जीवा – जीव
पावंति – पाते हैं
न – नहीं
दुक्ख – दुःख को
दोगच्चं – दुर्भाग्य को
तुह – आपका
सम्मत्ते – सम्यग्दर्शन
लद्धे – प्राप्त होने पर (मिलने पर)
चिंतामणि – चिंतामणि रत्न और
कप्पपायवब्भहिए – कल्पवृक्ष से भी अधिक

पावंति – प्राप्त करते हैं
अविग्घेणं – निर्विघ्न रूप से
जीवा – जीव
अयरामरं – अजर-अमर
ठाणं – स्थान को
इअ – इस प्रकार
संथुओ – स्तुति किए गए
महायस – हे महान यश वाले (कीर्तिवान) प्रभु!
भत्तिब्भर – भक्ति के अतिशय से।
निब्भरेण – परिपूर्ण
हियएण – हृदय से
ता – उस कारण से (इसलिए)
देव – हे देव!
दिज्ज – दीजिए
बोहिं – बोधि (सम्यक्त्व)
भवे भवे – भव-भव में (हर जन्म में)
पास जिणचंद – हे श्री पार्श्व जिनचन्द्र!

जयवीयराय (प्रार्थना) सूत्र – शब्दार्थ

जय – जय पाइए (आपकी जय हो)
वीयराय – हे वीतराग !
जगगुरु – हे जगत के गुरु!
होउ – हो (होवे)
ममं – मुझे (मेरा)
तुह – आपके
पभावओ – प्रभाव से
भयवं – हे भगवंत (हे भगवान)!
भवनिव्वेओ – भव-निर्वेद (संसार के प्रति उदासीनता/वैराग्य)
मग्गाणुसारिआ – मार्गानुसारिता
इट्ठफल – इष्ट (वांछित) फल की
सिद्धी – सिद्धि (प्राप्ति)
लोगविरुद्धच्चाओ – लोक-विरुद्ध कार्यों का त्याग
गुरुजणपूआ – गुरुजनों की पूजा
परत्थकरणं – परोपकार करना
सुहगुरुजोगो – सुगुरु का योग
तव्वयण – उनके वचनों का
सेवणा – सेवन करना
आभव – जब तक संसार में रहना पड़े तब तक
अखंडा – अखंड (निरंतर/बिना टूटे)
वारिज्जइ – निषेध किया गया है
जइ वि – यद्यपि (जो कि / भले ही)
नियाणबंधणं – नियाण-बंधन
तुह – आपके
समए – सिद्धांत में
तहवि – तो भी (तथापि)
ममं – मुझे (मेरे लिए)
हुज – होवे (हो जो)
सेवा – सेवा
भवेभवे – भव-भव में

तुम्ह – आपके	पणामकरणेणं – प्रणाम करने से
चलणाणं – चरणों की	सर्वमंगल – सभी मांगलिकों में
दुक्खक्खओ – दुःखों का क्षय	मांगल्यं – मंगल रूप
कम्मक्खओ – कर्मों का क्षय	सर्वकल्याण – सभी कल्याणों का
समाहिमरणं – समाधि-मरण	कारणम् – कारण रूप
बोहिलाभो – बोधि-बीज का लाभ	प्रधानं – प्रधान (श्रेष्ठ)
संपज्जउ – प्राप्त हो	सर्वधर्माणां – सभी धर्मों में
मह एअं – मुझे, यह	जैनं – जैन
तुह – आपको	जयति – जय पाता है
नाह – हे नाथ	शासनम् – शासन

अरिहंत चेइआणं सूत्र (शब्दार्थ)

अरिहंत – अरिहंत देव की	निरुवसग्गवत्तियाए – उपसर्ग से रहित स्थानक (मोक्ष) को प्राप्त करने के निमित्त
चेइयाणं – प्रतिमाओं की	सद्धाए – श्रद्धा से
वंदणवत्तियाए – वंदना करने के निमित्त (उद्देश्य से)	मेहाए – मेधा से (निर्मल बुद्धि से)
पूअणवत्तियाए – पूजा करने के निमित्त।	धिइए – चित्त की स्थिरता से
सक्कारवत्तियाए – सत्कार करने के निमित्त	धारणाए – धारणापूर्वक से
सम्माणवत्तियाए – सम्मान करने के निमित्त	अणुप्पेहाए – बार-बार चिंतन-मनन करके
बोहिलाभवत्तियाए – बोधि-लाभ के निमित्त	वड्ढमाणीए – बढ़ते हुए शुभ परिणामों/भावों से
	ठामि – रहता हूँ / करता हूँ
	काउस्सग्गं – कायोत्सर्ग

चौदह नियम धारण करने की विधि

कारण: संसार में भोगने (उपयोग करने) के लिए अनगिनत वस्तुएं हैं, लेकिन हम उन सभी का उपयोग नहीं करते हैं। जब तक हम किसी वस्तु का त्याग नहीं करते, तब तक उसका उपयोग न करने के बावजूद उसका पाप (अव्रत का पाप) हमें लगता रहता है। चौदह नियम लेने से हम अपनी आवश्यकता के अनुसार मर्यादा (सीमा) तय करते हैं और शेष सभी वस्तुओं के पाप से बच जाते हैं।

लाभ :

- भोगने की इच्छाशक्ति (तृष्णा) कम होती है।
- नए कर्मों का बंध होना रुक जाता है।
- थोड़ी वस्तुओं का उपयोग करके, पूरे संसार के पाप के भागीदार बनने से बचा जा सकता है।

नियम लेने की रीति:

- **कब लें:** दिन में दो बार (सुबह और शाम को देशावगासिक का पच्चक्खाण)।
- **समय अवधि:** यह नियम केवल १२-१२ घंटे के लिए ही होता है (सुबह लिया हुआ नियम शाम तक और शाम को लिया हुआ नियम सुबह तक रहता है)।
  विधि: रोजमर्रा की जरूरत की वस्तुओं की संख्या या सीमा निश्चित करना और शेष सभी चीजों का त्याग करना। आइए सबसे पहले हम इन चौदह नियमों को जान लेते हैं।

सचित्त-दव्व-विगई-वाणह-तंबोल-वत्थ-कुसुमेसु,
वाहण-सयण-विलेवण-बंभ-दिसि-न्हाण-भत्तेसु।

१४ नियमों का विवरण (संख्या/मर्यादा तय करना):

- **सचित्त :** सजीव वस्तुएं, जैसे-कच्चा पानी, कोल्ड ड्रिंक्स, फल, कच्चा नमक आदि (इनकी संख्या तय करना)।
- **द्रव्य :** मुख से ली जाने वाली अलग-अलग नाम और स्वाद वाली वस्तुएँ (कुल संख्या तय करना)।
- **विगई :** दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और तली हुई चीजें या महाविगई (इनका मूल से या कच्चे रूप में त्याग या मर्यादा करना)।

- **वाणह :** जूते, चप्पल, सैंडल, स्लीपर आदि (संख्या तय करना)।
- **तंबोल (तांबूल):** पान, सुपारी, सौंफ, मुखवास आदि (वजन या संख्या तय करना)।
- **वत्थ:** पहनने के कपड़ों की जोड़ी (संख्या तय करना)।
- **कुसुमेसु :** सूंघने की वस्तुएं, जैसे-इत्र, सेंट, फूल आदि (संख्या या वजन तय करना)।
- **वाहण:** स्कूटर, मोटरसाइकिल, कार, साइकिल आदि (संख्या तय करना)।
- **सयण :** बैठने और सोने के साधन, जैसे-बिस्तर, सोफा, कुर्सी, पलंग आदि (संख्या तय करना)।
- **विलेवण :** शरीर पर लगाई जाने वाली चीजें, जैसे-साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम आदि (वजन या संख्या तय करना)।
- **बंभ (ब्रह्मचर्य):** अपनी शक्ति के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत की मर्यादा धारण करना
- **दिशि :** दसों दिशाओं में आने-जाने की सीमा (किलोमीटर में तय करना)
- **न्हाण :** दिन में कितनी बार स्नान करना है (उसकी संख्या तय करना)
- **भत्तेसु :** आहार (भोजन) और पानी (इसकी मर्यादा या वजन तय करना)।

इसके अतिरिक्त नीचे लिखे नियमों की भी मर्यादा तय की जाती है:

- **पृथ्वीकाय:** मिट्टी, नमक, सोना, चांदी, हीरा (डायमंड) आदि की मर्यादा।
- **अप्काय:** नहाने, धोने और पीने के पानी के लिए बाल्टी की संख्या निश्चित करना।
- **तेउकाय (अग्निकाय):** रसोई का चूल्हा, गैस, बिजली के स्विच आदि के उपयोग की संख्या तय करना।
- **वाउकाय (वायुकाय):** पंखे, एयर कंडीशनर (AC), झूले आदि की संख्या तय करना।
- **वनस्पतिकाय:** हरी सब्जियां और फलों की संख्या निश्चित करना।
- **त्रसकाय:** चलते-फिरते जीवों की यतना (रक्षा) करना।
- **असि :** सुई, चाकू, कैंची, सरोता आदि की संख्या तय करना।
- **मसि :** लिखने के लिए पेन, पेंसिल आदि की संख्या तय करना।
- **कृषि :** खेती के साधन जैसे-हल, फावड़ा, कुल्हाड़ी आदि की संख्या निश्चित करना।

पदार्थ: भक्ष्याभक्ष्य भाग - १

जैन धर्म में आहार (भोजन) को केवल शरीर टिकाए रखने का साधन नहीं, बल्कि आत्मा की शुद्धि का मार्ग माना गया है। "जैसा आहार, वैसा ओडकार (डकार) और वैसे ही विचार।" शास्त्रों के अनुसार, अशुद्ध आहार से मन में काम, क्रोध और लोभ जैसे विकार पैदा होते हैं। सात्विक आहार मन को शांत और ध्यान के योग्य बनाता है। आधुनिक विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि भोजन का चयन हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

जैन धर्म में आहार के चयन का मुख्य आधार 'अहिंसा' है। जिस भोजन में कम से कम हिंसा हो (जैसे कि फल, अनाज) उसे '**भक्ष्य**' (खाने योग्य) और जिसमें अधिक हिंसा या अनंत जीव हों (जैसे कि कंदमूल, मांस) उसे 'अभक्ष्य' (ना खाने योग्य) माना जाता है।

शास्त्रों में २२ प्रकार के अभक्ष्य बताए गए हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

- **चार महाविगई**

१. मदिरा : हर प्रकार की शराब बुद्धि को भ्रष्ट करके सभी पाप कर्म कराने वाली है।

२. मांस : यह क्रूरतापूर्वक जीवों को मारकर प्राप्त किया जाता है जिसमें निरंतर असंख्य सम्मूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते रहते हैं।

३. शहद : यह मधुमक्खियों की लार जैसी अशुचि वस्तु है। इसे हजारों मधुमक्खियों और उनके अंडों को मारकर प्राप्त किया जाता है।

४. मक्खन (बटर) : जब छाछ से मक्खन अलग होता है, तब उसमें अंतर्मुहूर्त के भीतर ही असंख्य त्रस जीव उत्पन्न होने लगते हैं।

- **चार प्रकार के फल**

५. तुच्छ फल : जिसमें खाने योग्य भाग कम और फेंकने योग्य भाग (कचरा) ज्यादा हो, जैसे कि चणीबोर (छोटे जंगली बेर)।

६. अंजान फल : जिसके नाम, गुण और दोष के बारे में कोई जानकारी न हो।

७. बहुबीज फल : जिसमें बहुत सारे बीज एक-दूसरे से छुए हुए (सटे हुए) होते हैं, जैसे कि अंजीर, खसखस आदि।

८. बैंगन (रींगणा) : तामसी प्रकृति का होने के कारण यह मन में विकार पैदा

करने का कारण बनता है।

- **चार पदार्थ**

९-१०. हिम/ओले (कन्हैया/करा) : यह पानी का ठोस रूप है, अतः इसमें अनंत जीवों वाले 'निगोद' की उत्पत्ति होने की संभावना रहती है।

११. जहर (विष) : यह मृत्यु का कारण है।

१२. मिट्टी (माटी) : इसमें अनेक सजीव (पृथ्वीकायिक) जीव होने की संभावना होती है।

- **पांच टेटा (उदुंबर फल):**

(१३-१७) बड़ (बरगद), पीपल, प्लक्ष (पाकड़), उदुंबर (गूलर) और काकोदुंबर (कठगूलर) के फल (टेटा); इन फलों के भीतर सूक्ष्म त्रस जीवों की बहुत बड़ी संख्या होती है।

१८. अनंतकाय (कंदमूल): जमीकंद, कच्ची हल्दी, अदरक, ग्वारपाठा (एलोवेरा), लहसुन, गाजर, मूली, कुकुरमुत्ता (मशरूम), आलू, प्याज, रतालू आदि और फफूंद (फूग) आदि में अनंत जीव होते हैं।

- बाज़ार की चाय और गन्ने के रस में अदरक तथा पापड़ में अदरक-लहसुन का उपयोग हो सकता है, जो कि अनंतकाय हैं।
- नमी या भेज़ वाले वातावरण में लड्डू आदि मिठाइयों और अचार-पापड़ के ऊपर फफूंद (फूग) लग जाती है। फफूंद भी अनंतकाय है, इसलिए बिना अच्छी तरह देखे इनका उपयोग न करें।
- कोई भी वस्तु खरीदने से पहले उसके पैकेट के पीछे लिखी सामग्री की सूची (Ingredients List) अवश्य पढ़ें। कई बार उसमें अनजाने में ही कंदमूल (आलू, प्याज, लहसुन, चुकंदर) का पाउडर या अन्य अभक्ष्य सामग्रियां मिलाई गई होती हैं।
- अक्सर तैयार सूप, सोया सॉस, चिली सॉस और इंस्टेंट नूडल्स के मसालों में स्वाद बढ़ाने और उन्हें गाढ़ा करने के लिए आलू या साबूदाने से बने स्टार्च का उपयोग किया जाता है। बाजार में मिलने वाले तैयार पापड़, चावल के पापड़ (सारेवडा / खीचिया) आदि में भी साबूदाने के पाउडर का उपयोग होता है।

● ● ●

मौखिक कक्षा - १३

सूत्र	: कल्याणमंदिर स्तोत्र (सूत्र ६१)	४०
अर्थ	: वंदित्तु सूत्र (शब्दार्थ)	३०
विधि	: धारणा अभिग्रह, मुट्ठीसहिअं पच्चक्खाण लेने की विधि	१०
पदार्थ	: भक्ष्याभक्ष्य भाग - २	२०
		१००

वंदित्तु सूत्र (शब्दार्थ)

वंदित्तु – वंदना करके
सव्वसिद्धे – सर्व सिद्ध स्वरूप ऐसे तीर्थंकर तथा सिद्ध भगवंतों को
धम्मायरिए – धर्माचार्यों को
सव्वसाहू – आचार्य, उपाध्याय आदि सर्व साधु भगवंतों को
इच्छामि – मैं इच्छा करता हूँ
पडिक्कमिउं – प्रतिक्रमण करने की
सावगधम्माइआरस्स – श्रावक धर्म के विषय में लगे हुए अतिचारों की
जो मे – जो मेरे द्वारा
वयाइआरो – व्रतों के विषय में अतिचार लगा हो
नाणे – ज्ञान के विषय में
तह – तथा
दंसणे – दर्शन के विषय में
चरित्ते – चारित्र के विषय में
सुहुमो – सूक्ष्म
बायरो वा – अथवा बादर
तं – उसे।
निंदे – मैं निंदता हूँ (अपने मन में उसकी निंदा करता हूँ)
च – तथा
गरिहामि – गुरु की साक्षी में उसकी गर्हा (आलोचना) करता हूँ
दुविहे – दो प्रकार के
परिग्गहंमि – परिग्रह के विषय में
सावज्जे – सावद्य (पापयुक्त)
बहुविहे – बहुत प्रकार के
आरंभे – आरंभ (हिंसा आदि क्रियाएँ)
कारवणे – दूसरों से कराने से
करणे – स्वयं करने से
अ – और अनुमोदन करने से (सराहना करने से)
पडिक्कमे – मैं प्रतिक्रमण करता हूँ (पीछे हटता हूँ)
देसिअं – दिवस संबंधी (दिनभर के

पापों का)
सव्वं – सर्व (सभी अतिचारों के प्रति)
बद्धं – बांधा हो (जो कर्म बांधे हों)
इंदिएहिं – इन्द्रियों द्वारा
चउहिं – चार
कसाएहिं – कषायों द्वारा (क्रोध, मान, माया, लोभ)
अप्पसत्थेहिं – अप्रशस्त (अशुभ) भावों द्वारा
रागेण – राग (आसक्ति) से
व – अथवा
दोसेण – द्वेष (नफ़रत) से
आगमणे – जाने में
निग्गमणे – आने में
ठाणे – मिथ्यात्वियों के स्थान पर खड़े रहने में
चंकमणे – इधर-उधर घूमने-फिरने में।
अणाभोगे – बिना उपयोग के (असावधानी से)
अभिओगे – राजा अथवा बहुत से लोगों के दबाव या आग्रह से
निओगे – पराधीनता (मजबूरी) के कारण से
संका – जिनवचन में शंका करना
कंख – अन्य मत की इच्छा या प्रशंसा करना
विगिच्छा – साधु-साध्वियों की मलिनता देखकर घृणा करना अथवा धर्म के फल में संदेह करना
पसंस – मिथ्यात्वियों की मन से प्रशंसा करना
तह – वैसे ही
संथवो – मिथ्यात्वियों के साथ परिचय या घनिष्ठता बढ़ाना
कुलिंगीसु – कुगुरुओं/पाखंडियों का संसर्ग
सम्मत्तस्स – सम्यक्त्व (सच्ची श्रद्धा) के
छक्काय – छह काय के जीवों की
समारंभे – समारंभ के विषय में (हिंसा की तैयारी करने में)
पयणे – स्वयं (भोजन आदि) पकाने में
पयावणे – दूसरों से पकवाने में
जे – जो
दोसा – दोष लगे हों
अत्तट्ठा – अपने स्वार्थ के लिए
परट्ठा – दूसरों के लिए
उभयट्ठा – अपने और दूसरों दोनों के लिए
चेव – निश्चय ही
पंचण्हं – पाँच
अणुव्वयाणं – अणुव्रतों के विषय में
गुणव्वयाणं – गुणव्रतों के विषय में
तिण्हं – तीन
सिक्खाणं – शिक्षाव्रतों के विषय में।
चउण्हं – चार।
पडिक्कमे – मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

पढमे – पहले।
अणुव्वयंमि – अणुव्रत के विषय में
थूलग – स्थूल (बड़े)
पाणाईवाय – प्राणातिपात (जीव हिंसा) की
विरइओ – विरति (नियम) का उल्लंघन करके
आयरियं – जो आचरण किया हो
अप्पसत्थे – अप्रशस्त (बुरे) भावों में रहकर
इत्थ – यहाँ पर
पमायप्पसंगेणं – प्रमाद (असावधानी) के प्रसंग से
वह – जीव को बेरहमी से मारना
बंध – रस्सी आदि से (पशु या मनुष्य को) बांधना
छविच्छेए – अंगों को काटना या घायल करना
अइभारे – क्षमता से अधिक बोझ लादना
भत्तपाण – भोजन और पानी (चारा-पानी)
वुच्छेए – रोकना या अंतराय करना
पढमवयस्स – इस पहले व्रत के
अइयारे – अतिचारों का
बीए – दूसरे
अणुव्वयंमि – अणुव्रत के विषय में
परिथूलग – अति बड़े
अलिअवयण – झूठ बोलने की
विरइओ – विरति का उल्लंघन करके
सहसा – बिना विचारे अचानक झूठ बोलना
रहस्स – किसी की गुप्त या छुपी हुई बात को प्रगट करना (राजद्रोह आदि का दोष लगाना)
दारे – पत्नी या स्त्री द्वारा कही गई गुप्त बात को बाहर प्रगट करना
मोसुवएसे – झूठा या गलत उपदेश देना
कूडलेहे – झूठे दस्तावेज या जाली हस्ताक्षर करना
बीअ – दूसरे
वयस्सइयारे – व्रत के अतिचारों को
तइए – तीसरे
अणुव्वयंमि – अणुव्रत के विषय में
थूलग – बड़े (स्थूल)
परदव्व – पराए धन/वस्तु की
हरण – चोरी करने की
विरइओ – विरति से (लगे दोष)
तेनाहडप्पओगे – चोरी का माल खरीदना या चोर की सहायता करना।
तप्पडिरूवे – मिलावट करना (खराब वस्तु को अच्छी बताकर बेचना)
विरुद्धगमणे – टैक्स की चोरी या राज्य नियमों के विरुद्ध व्यापार करना

कूडतुल – कम तोल (वजन) रखना
कूडमाणे – कम)माप (मीटर/लीटर) रखना
चउत्थे – चौथे
अणुव्वयं – अणुव्रत के विषय में
निच्चं – निरंतर
परदारगमण – परस्त्री के साथ गमन करने की (मर्यादा का उल्लंघन)
अपरिग्गहिआ – कुंवारी कन्या या अनाथ-विधवा के साथ भोग भोगना
इत्तर – वेश्या या अन्य किसी के पास अल्पकाल के लिए रखी स्त्री के पास जाना
अणंग – कामक्रीड़ा के अप्राकृतिक तरीकों का उपयोग करना
विवाह – अपने पुत्र-पुत्री के अलावा दूसरों के विवाह करवाने में जुटना
तिव्वअणुरागे – कामभोगों में अत्यधिक आसक्ति रखना
चउत्थ – चौथे (व्रत के अतिचार)
इत्तो – इसके बाद
अणुव्वए – अणुव्रत के विषय में
पंचमंमि – पाँचवें
परिमाण परिच्छेए – परिग्रह (संग्रह) की मर्यादा का उल्लंघन करने से
धण – धन (नकद, बैंक बैलेंस)
धन्न – धान्य (अनाज)
खित्त – क्षेत्र (जमीन, प्लॉट)
वत्थु – वस्तु (मकान, दुकान)
रुप्प – चांदी
सुवन्ने – सोना
कुविअ – सोना-चांदी के अलावा अन्य धातुएं (तांबा, पीतल, स्टील) और बर्तन-कपड़े आदि
परिमाणे – तय की गई मर्यादा से अधिक रखने पर
दुपए – दास-दासी (कर्मचारी) आदि दो पैर वाले
चउप्पयंमि – गाय, भैंस, घोड़े आदि चार पैर वाले पशुओं की मर्यादा बढ़ाना
गमणस्स – जाने के
परिमाणे – परिमाण (मर्यादा) से अधिक आगे चले जाने पर
दिसासु – दिशाओं में
उड्ढं – ऊर्ध्व (ऊपर की) दिशा
अहे – अधो (नीचे की) दिशा
तिरिएं – तिर्यक (तिरछी/चारों तरफ की) दिशा
वुड्ढि – लोभ के कारण अपनी तय की हुई मर्यादा को बढ़ा लेना
सइअंतरद्धा – चलते समय मार्ग में अपनी तय की गई सीमा भूल जाने से आगे निकल जाना

पढमंमि – पहले
गुणव्वए – गुणव्रत के विषय में
मज्जंमि – मदिरा (शराब)
मंसंमि – मांस
पुप्फे – पुष्प
फले – फल
गंध – सुगंधित इत्र, केसर आदि
मल्ले – फूलों की माला
उवभोग-परिभोगे – उपभोग (एक बार काम आने वाली वस्तु) और परिभोग (बार-बार काम आने वाली वस्तु)
बीअंमि – दूसरे
गुणव्वए – गुणव्रत के विषय में
सच्चित्ते – सचित्त (सजीव) वस्तुओं का सेवन करना
पडिबद्धे – सचित्त से ढकी या जुड़ी हुई वस्तु का उपयोग करना
अपोल – पूरी तरह न पकाए गए कच्चे भोजन का सेवन
दुप्पोलिअं – आधे कच्चे, आधे पक्के भोजन का उपयोग
आहारे – भोजन करने से
तुच्छोसहि – तुच्छ औषधि या तुच्छ फल (जिनमें खाने का कम और कचरा ज्यादा हो) का भक्षण करना
भक्खणया – भक्षण करने से
इंगाली – अंगार कर्म (कोयला बनाना, ईंट-भट्टों का व्यापार, अग्नि संबंधी कार्य)
वण – वन कर्म (जंगल काटना, हरी वनस्पति बेचना, खेती का बड़ा व्यापार)
साडी – शकट कर्म (गाड़ियां, बैलगाड़ी, ट्रक आदि वाहन बनाना या बेचना)
भाडी – भाटिक कर्म (पशुओं या वाहनों को माल ढोने के लिए भाड़े पर देना)
फोडी – स्फोटक कर्म (कुएं, बावड़ी, खदानें खोदना या पहाड़ों को तोड़ना)
सुवज्जए – पूरी तरह से त्यागने योग्य
कम्मं – पाप कर्म
वाणिज्जं – व्यापार
चेव – और निश्चय ही
दंत – हाथीदांत, कस्तूरी, चमड़ा, मोती आदि जीवों के अंगों का व्यापार
लक्ख – लाख, गोंद, मोम आदि का व्यापार (जिसमें अनंत जीवों की हिंसा हो)
रस – रस का व्यापार (घी, तेल, शराब, शहद, गुड़ आदि रसों का थोक व्यापार)
केस – केश का व्यापार (बाल, ऊन, पशुओं, दासों या पक्षियों का

क्रय-विक्रय)
विसविसयं – विष (जहर), अफीम, कीटनाशक दवाइयाँ और हथियारों का व्यापार
एवं – इस प्रकार
खु – निश्चय ही
जंतपिल्लण – कोल्हू, चक्की, गन्ना पेरने की मशीन आदि यंत्रों को चलाना या चलवाना
कम्मं – कर्म
निल्लंछणं – कान-नाक छेदना, छेदाना
च – और
दवदाणं – जंगलों या खेतों में आग लगाना
सर – सरोवर
दह – गहरे कुंड या जलाशय
तलाय – तालाबों को
सोसं – अपने स्वार्थ के लिए सुखा देना
असइपोसं – वेश्याओं, हिंसक पशुओं (जैसे कुत्ता, बिल्ली) या दुष्ट लोगों का पोषण करना
वज्जिज्जा – इन सबका त्याग करना चाहिए
सत्थ – शस्त्र (तलवार, बंदूक, चाकू आदि हथियार)
अग्गि – अग्नि (माचिस, आग)
मुसल – मूसल, ओखली, कुल्हाड़ी आदि
जंतग – यंत्र (मशीनें)
तण – तृण (घास-फूस)
कट्ठे – काष्ठ (लकड़ी)
मंत – वशीकरण, मारण या सांप उतारने के खोटे मंत्र
मूल – जड़ी-बूटियाँ (दूसरों को नुकसान पहुँचाने या गर्भपात आदि के लिए देना)
भेसज्जे – दवाइयाँ (बिना प्रयोजन दूसरों को देना)
दिन्ने – स्वयं देने से
दवाविए – दूसरों से दिलवाने से
वा – अथवा
न्हाण – बिना छाने पानी से नहाना या जरूरत से ज्यादा नहाना
उव्वट्टण – उबटन या पीठिका रगड़कर शरीर का अत्यधिक श्रृंगार करना
वन्नग – मेहंदी, अलता, गुलाल आदि से शरीर को रंगना
विलेवणे – केसर, चंदन, सेंट आदि का अनावश्यक लेप (शारीरिक साज-सज्जा) करना
सद्द – शब्द
रूव – रूप
रस – रस
गंधे – गंध
वत्थ – वस्त्र

आसण – आसन
आभरणे – आभूषण
कंदप्पे – कामभोग संबंधी कथा (बातें) करना
कुक्कुइए – लोगों को हँसी आए ऐसी शारीरिक चेष्टाएँ करना
मोहरि – बड़बोलेपन में आकर अयोग्य या अमर्यादित वचन बोलना
अहिगरण – शस्त्रादि तैयार करना या उन्हें इकट्ठा करना
भोगअइरित्ते – उपभोग और परिभोग की वस्तुएँ अपनी आवश्यकता से अधिक रखना
दंडमि अणट्ठाए – अनर्थदंड विरमण नाम के
तइअंमि – तीसरे
गुणव्वए – गुणव्रत के विषय में
तिविहे – तीन प्रकार के
दुप्पणिहाणे – दुःप्रणिधान या बुरे कार्यों में व्यापार
अणवट्ठाणे – अविनयपूर्वक बर्ताव करना, अथवा दो घड़ी (४८ मिनट) का समय पूरा होने से पहले ही सामायिक पाल लेना
सइविहूणे – असावधानी या प्रमाद के कारण यह याद ही न रहना कि सामायिक ली है या नहीं
वितहकए – वितथपने से अर्थात् सामायिक की विधि को अशुद्ध या गलत तरीके से करना
पढमे – प्रथम
सिक्खावए – शिक्षाव्रत के विषय में
आणवणे – अपनी तय की हुई मर्यादा भूमि (सीमा) से बाहर से कोई वस्तु मँगाना
पेसवणे – मर्यादा की भूमि से बाहर अपने काम के लिए किसी दूसरे को भेजना
सद्दे – मर्यादा की भूमि से बाहर खड़े व्यक्ति को खाँसकर या आवाज देकर अपना काम समझाना
रूवे – अपनी मर्यादा से बाहर खड़े व्यक्ति को अपना रूप (चेहरा या शरीर) दिखाकर अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराना
पुग्गलक्खेवे – मर्यादा से बाहर कंकड़ या कोई वस्तु फेंककर अपना प्रयोजन सिद्ध करना या ध्यान खींचना
देसावगासिअंमि – देशावकाशिक नाम के
बीए – दूसरे
सिक्खावए – शिक्षाव्रत के विषय में
संथारा – संथारा (बिछौने/बिस्तर) संबंधी दोष
उच्चारविहि – लघुशंका (पेशाब) तथा दीर्घशंका (मलत्याग) करने

की भूमि की जाँच संबंधी दोष
पमाय – प्रमाद (आलस्य या असावधानी)
तह चेव – और वैसे ही
भोयणाभोए – उपवास आदि में बार-बार भोजन संबंधी चिंता या विचार करना
पोसहविहि – पौषध व्रत की विधि
विवरीए – विपरीत (गलत) तरीके से आचरण करने से
तइए – तीसरे
सिक्खावए – शिक्षाव्रत के विषय में
सच्चित्ते – सचित्त वस्तु पर (जैसे हरी घास पर)
निक्खिवणे – मुनि के लिए आहार आदि रखना
पिहिणे – मुनि को देने योग्य अचित्त वस्तु को किसी सचित्त पदार्थ (जैसे हरे पत्ते) से ढकना
ववएस – देने की इच्छा न होने पर अपनी वस्तु को दूसरों की बताना, अथवा देने के भाव से दूसरों की वस्तु को अपनी बताना
मच्छरे – क्रोध, अभिमान या ईर्ष्या का भाव रखकर दान देना
चेव – निश्चय ही
कालाईक्कमदाणे – गोचरी का सही समय बीत जाने के बाद मुनिराज को आमंत्रण देना
चउत्थे – चौथे
सुहिएसु – सम्यग्ज्ञान और चारित्र में जो लीन हैं, ऐसे सुविहित के विषय में
दुहिएसु – बीमारी से पीड़ित अथवा तपस्या के कारण कमजोर हुए दुःखी जीवों के विषय में
जा – जो
मे – मेरे द्वारा
अस्संजएसु अ – नथी
स्वं – स्वच्छंदतापूर्वक
यत – यत्नपूर्वक (अपनी मर्जी से नहीं, बल्कि गुरु की आज्ञा के अनुसार विचरने वाले)
अणुकंपा – अनुकंपा
साहूसु – उत्तम साधुओं के विषय में
संविभागो – संविभाग (अपने आहार-पानी आदि का मुनिराज के साथ प्रेमपूर्वक हिस्सा करना)
चरण – चरणसत्तरी
करण – करणसत्तरी
जुत्तेसु – इन गुणों से सहित (युक्त)
संते – सामर्थ्य होने पर भी
फासुअदाणे – प्रासुक (निर्दोष/जीव रहित) आहार-पानी का दान न देने का दोष
इहलोए – इस लोक (संसार) के सुखों की

परलोए – परलोक (स्वर्ग आदि) के सुखों की
जीविय – जीने की इच्छा
मरणे – (कष्टों से डरकर) मरने की इच्छा
आसंसपओगे – तीव्र कामना या भोगों की वांछा का मानसिक व्यापार
पंचविहो – पाँच प्रकार के
अइयारो - अतिचार
मा – मत
मज्झ – मुझे
हुज्ज – होवे
मरणंते – मरण के समय तक
काएण – कायोत्सर्ग आदि शरीर की क्रियाओं से
काइअस्स – काया द्वारा किए गए दोषों का
वाइअस्स – वचन द्वारा किए गए दोषों का
वायाए – जिनेंद्र भगवान की स्तुति आदि वचन के व्यापार से
मणसा – मन के द्वारा
माणसिअस्स – मन के द्वारा किए गए खोटे विचारों के दोषों का
वंदण – दो प्रकार के वंदन (नमन)
वय – बारह प्रकार के व्रत
सिक्खा – शिक्षा
गारवेसु – तीन प्रकार के गारव के विषय में
सन्ना – चार संज्ञाएँ (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह की इच्छा)
कसाय – चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ)
दंडेसु – तीन दंड (मनोदंड, वचनदंड, कायदंड - शल्य)
गुत्तीसु – तीन गुप्ति (मन, वचन, काया को रोकना)
समिइसु– पाँच समिति
सम्मदिट्ठी – सम्यग्दृष्टि (सच्ची श्रद्धा वाला)
जीवो – जीव
जइवि हु – यद्यपि निश्चय ही
पावं – पाप कर्म
समायारे – आचरण करे (पाप हो जाए)
किंचि – थोड़ा भी
अप्पो – बहुत कम या अल्प
सि – उसका (उस श्रावक का)
बंधो – कर्मों का बंध होता है
जेण – क्योंकि
निद्धंधसं – क्रूरता या निर्दयतापूर्वक हिंसा का आचरण
कुणइ – करे
तंपि हु – उस लगे हुए पाप को भी निश्चय ही
सपडिक्कमणं – प्रतिक्रमण (आलोचना) करने से सहित
सप्परिआवं – सच्चे पश्चात्ताप से सहित

सउत्तरगुणं – गुरु द्वारा दिए गए प्रायश्चित को धारण करने से सहित

खिप्पं – अत्यंत शीघ्रता से

उवसामेई – शांत (नष्ट) कर देता है

वाहिव्व – किसी भयंकर बीमारी की तरह

सुसिक्खिओ – अच्छी तरह से विद्या सीखा हुआ

विज्जो – वैद्य (डॉक्टर)

जहा – जैसे

विसं – जहर को

कुट्ठगयं – पूरे शरीर में फैले हुए

मंतमूल – मंत्र और जड़ी-बूटी के

विसारया – कुशल ज्ञाता (जानकार)

विज्जा – वैद्यराज

हणंति – नष्ट कर देते हैं

मंतेहिं – अपने सामर्थ्यवान मंत्रों द्वारा

तो – वैसे ही

निव्विसं – जहर से रहित (पाप मुक्त)

अट्ठविहं – आठ प्रकार के

कम्मं – कर्मों को

रागदोष – रागद्वेष से

समज्जिअं – पूर्व में बांधे गए

आलोअंतो – गुरु के समीप अपने पापों को प्रगट करता हुआ

निंदंतो – अपनी आत्मा की गवाही से पाप की निंदा करता हुआ

खिप्पं – बहुत जल्दी

हणई – नष्ट कर देता है

सुसावओ – एक सच्चा और श्रेष्ठ श्रावक

कयपावो – यदि कोई पाप कार्य हो भी गया हो, तो ऐसा

अवि – वह भाग्यशाली मनुष्य भी

मणुस्सो – मनुष्य

आलोईय – अपने पापों की आलोचना करता हुआ

निंदिय – आत्मा की साक्षी से उसे धिक्कारता हुआ

गुरुसगासे – गुरु महाराज के चरणों के पास आकर

अइरेग – अत्यंत बहुत अधिक

लहुओ – हल्का (पाप मुक्त) हो जाता है

ओहरिअभरुव्व – जैसे कोई भारी बोझ को अपने सिर से नीचे उतार देता है

भारवहो – बोझ उठाने वाला मजदूर

आवस्सएण – यह आवश्यक क्रिया (प्रतिक्रमण) करने से

बहुरओ – आरंभ और परिग्रह के कारण बहुत पापों से भरा हुआ जीव भी

दुक्खाणं – पाप रूपी दुखों का

अंतकिरिअं – समूल नाश

काही – अवश्य करेगा

अचिरेण – बहुत थोड़े

कालेण – समय में ही

आलोयणा – पापों को गुरु के सामने स्वीकार करने की पद्धति

बहुविहा – बहुत प्रकार की है

संभरिआ – याद किए हों (जो दोष याद आए हों)

पडिक्कमणकाले– प्रतिक्रमण करने के पवित्र समय पर

मूलगुण – श्रावक के मूल गुणों (व्रतों) के विषय में

उत्तरगुणे – उत्तर गुणों (नियमों) के विषय में

निंदे – मैं अपने मन में निंदा करता हूँ

गरिहामि – गुरु महाराज की साक्षी में उनकी आलोचना करता हूँ

धम्मस्स – इस श्रावक धर्म को

केवलिपन्नत्तस्स – जो केवलज्ञानी भगवान द्वारा प्रतिपादित (कहा गया) है

अब्भुट्ठिओमि – मैं उसे स्वीकार करने के लिए तत्पर (खड़ा) हुआ हूँ

आराहणाए – धर्म की सच्ची आराधना के लिए

विरओमि – मैं पूरी तरह से पीछे हटा हूँ

विराहणाए – धर्म की विराधना (अवहेलना) करने से

पडिक्कंतो – पाप कर्मों से पीछे हटा हुआ मैं

चिर-संचिअ – लंबे समय से इकट्ठे किए गए

पणासणीई – पापों का नाश करने वाली

भव – संसार के

सयसहस्स – सौ हजार अर्थात् लाखों भवों (जन्मों) के पापों को

महणीए – नष्ट करने वाली (यह प्रतिक्रमण क्रिया है)

विणिग्गय – प्रभु के मुखारविंद से निकली हुई

कहाई – धर्मकथाओं के श्रवण और मनन से

वोलंतु – सुखपूर्वक व्यतीत (बीत) जाएँ

दिअहा – मेरे जीवन के दिन

मम – मेरे लिए

मंगलं – सदा कल्याणकारी और मंगलमय हो

अरिहंता – अरिहंत भगवान

सिद्धा – सिद्ध भगवान

साहू – पूज्य साधु भगवंत

सुअं – श्रुत धर्म (प्रभु की वाणी/शास्त्र)

धम्मो – उत्तम चारित्र धर्म

सम्मदिट्ठी – सम्यग्दृष्टि

देवा – शासन देव-देवियाँ

दिंतु – मुझे प्रदान करें

समाहिं – चित्त की परम स्थिरता (समाधि भाव)

बोहिं – बोधिबीज अर्थात् सम्यक्त्व की प्राप्ति

पडिसिद्धाणं – जिन कार्यों को करने का शास्त्रों में निषेध है, ऐसे अशुभ कार्य
करणे – करने से जो दोष लगे
किच्चाणं – जो कार्य करने योग्य हैं, ऐसे शुभ कार्य
अकरणे – न करने से जो दोष लगे
पडिक्कमणं – सच्चा प्रतिक्रमण है
असद्दहणे – सूक्ष्म विचारों और जिनवचनों पर पूर्ण रूप से श्रद्धा न करने से
विवरीय – शास्त्रों से विपरीत
परूवणाए – प्ररूपणा करने से जो दोष लगा हो, उसके लिए
खामेमि – मैं क्षमा माँगता हूँ
सव्वजीवे – दुनिया के सभी जीवों से
सव्वे – सभी
जीवा – जीव
खमंतु – मुझे क्षमा करें
मे – मेरी
मित्ती – मैत्री (मित्रता) है

सव्वभूएसु – सभी प्राणियों के साथ
वेरं – वैरभाव या दुश्मनी
मज्झ – मेरी
केणई – किसी भी जीव के साथ नहीं है
अहं – मैंने
आलोईअ – अपने पापों को प्रगट किया (आलोचना की)
निंदिअ – अपनी अंतरात्मा की साक्षी से उसकी निंदा की
गरहिअ – गुरु महाराज के समक्ष अपनी भूलों को स्वीकार किया
दुगंछिअं – अपने पापों के प्रति ग्लानि या दुर्गंछा (नफ़रत) की
सम्मं – सम्यक् प्रकार से
तिविहेण – तीन प्रकार से
पडिक्कंतो – पापों से सर्वथा पीछे हटता हुआ मैं
वंदामि – भावपूर्वक वंदना करता हूँ
जिणे – जिनेंद्र भगवंतों को
चउव्वीसं – चौबीस ही तीर्थंकर देवों को

धारणा अभिग्रह पच्चक्खाण

कारण: इस पच्चक्खाण का मुख्य उद्देश्य जीवन में अनुशासन और संयम लाना है। मन में जो निश्चित धारणा या संकल्प किया हो, उसे धार्मिक विधि द्वारा दृढ़ करने के लिए यह पच्चक्खाण लिया जाता है। यह पच्चक्खाण श्रावक के जीवन में छोटे-छोटे नियमों के माध्यम से बड़े फल की प्राप्ति कराने वाला है।

लाभ :

- **संकल्प शक्ति :** इस पच्चक्खाण से व्यक्ति की इच्छाशक्ति और संकल्प शक्ति मजबूत बनती है।
- **अविरति का नाश :** जिस बात या वस्तु का त्याग किया हो, उतने समय के लिए जीव पाप कर्मों के बंध से बच जाता है।
- **धार्मिक अनुशासन :** जीवन में क्रमबद्ध (नियमबद्ध) तरीके से धर्म का पालन करने की आदत पड़ती है।

पच्चक्खाण लेने की रीति:

दोनों हाथ जोड़कर, मन में दृढ़ संकल्प करके नीचे लिखे अनुसार बोलकर पच्चक्खाण लेना चाहिए:

"धारणा अभिग्गहं पच्चक्खाइ (पच्चक्खामि) अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।"

- **लेने की पद्धति:** जहाँ तक संभव हो, कोई भी नियम या पच्चक्खाण गुरु भगवंत (साधु साध्वीजी) के पास ही लेना चाहिए। यदि गुरु भगवंत का योग न हो, तो ऊपर लिखे अनुसार (प्रभु की) साक्षी मानकर स्वयं भी नियम लिया जा सकता है। स्वयं नियम लेने के बाद, जब भी भविष्य में गुरु भगवंत का मिलाप हो, तब उनके पास इस पच्चक्खाण को फिर से विधिवत लेना चाहिए।
- **नियम का प्रकार:** इस पच्चक्खाण द्वारा किसी भी प्रकार का छोटा या बड़ा नियम लिया जा सकता है। आपने मन में जिस वस्तु या कार्य को छोड़ने का निश्चय किया हो, उतने समय तक उस वस्तु का त्याग इस पच्चक्खाण से माना जाता है।

उदाहरण : जैसे कोई ऐसा अभिग्रह (संकल्प) ले कि-"मैं एक वर्ष तक प्रत्येक महीने की पाँचों तिथियों (चौदस, आठम, पंचम आदि) को हरी सब्जी का त्याग करूँगा।"

मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण लेने की विधि

कारण: इस पच्चक्खाण का मुख्य कारण 'अविरति' का त्याग है। जो श्रावक-श्राविका एक क्षण भी पच्चक्खाण के बिना (अव्रत की दशा में) रहना नहीं चाहते, उनके लिए यह पच्चक्खाण अत्यंत उपयोगी है। हर बार भोजन या पानी

ग्रहण करके खड़े होते समय यदि 'मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण' लेने की आदत डाल लें, तो दिन के २१-२२ घंटे विरति (संयम) का लाभ मिलता है।

लाभ : इस पच्चक्खाण को बार-बार लेने से बहुत बड़ा आत्मिक लाभ और पुण्य प्राप्त होता है:

- **एकासना करने वाले को:** यदि प्रतिदिन यह पच्चक्खाण लिया जाए, तो एक महीने में लगभग २९ उपवास जितना पुण्य मिल सकता है।
- **बिआसना करने वाले को:** एक महीने में लगभग २८ उपवास जितना लाभ मिलता है।
- **सामान्य श्रावक को:** जो कोई तपस्या नहीं करते, वे भी यदि बार-बार यह पच्चक्खाण लें तो उनका पूरा दिन विरतिपने में (संयम में) गिना जाता है और अगाध पुण्य का संचय होता है।

पच्चक्खाण लेने की रीति:

दोनों हाथ जोड़कर नीचे लिखे अनुसार बोलकर पच्चक्खाण लें:

"मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाई (पच्चक्खामि) अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ (वोसिरामि)।"

लेने का समय और नियम:

- **समय:** यह पच्चक्खाण दिन के दौरान कभी भी लिया जा सकता है
- **नियम:** यह पच्चक्खाण लेने के बाद जब तक पुनः मुट्ठी बांधकर नवकार मंत्र न गिना जाए, तब तक चारों प्रकार के आहार-अशन (भोजन), पान (पानी), खादिम (फल-मेवे), स्वादिम (मुखवास)-का पूर्ण रूप से त्याग रहता है

पच्चक्खाण पालने (पारने) की रीति : यह पच्चक्खाण दो तरीकों से पाला (पारा) जा सकता है:

1. जमीन या आसन पर बैठकर, हाथ की मुट्ठी बंद करके ३ नवकार मंत्र गिनकर इसे पारा जा सकता है।
2. अथवा- १ नवकार मंत्र + पारने का सूत्र + १ नवकार मंत्र गिनकर पारा जा सकता है।

पारने का सूत्र:

"मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाणं फासिअं पालिअं सोहिअं तीरिअं कीट्टिअं आराहिअं, जं

च न आराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।"

पदार्थ: भक्ष्याभक्ष्य भाग – २

शास्त्रों में २२ प्रकार के अभक्ष्य बताए गए हैं, जिनमें से (भाग-१ के अतिरिक्त) शेष प्रमुख अभक्ष्य नीचे दिए गए हैं:

१९. द्विदल : कच्चे (यानी अच्छी तरह से उबाले या गर्म न किए गए) दूध, दही या छाछ के साथ जब किसी भी प्रकार का दलहन (कठोल/दालें) मिलता है, तो उसमें तुरंत ही असंख्य द्वीन्द्रिय (दो इंद्रिय वाले) जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। इसे जैन शास्त्र में 'द्विदल दोष' कहा जाता है।

- कढ़ी, गट्टे की सब्जी, मेथी के थेपले, डोसा, ढोकला, इडली आदि बनाते समय अक्सर लोग दही या छाछ को बिना गर्म किए ही सीधे आटे या बेसन में मिला देते हैं, जिससे यह भोजन द्विदल (अभक्ष्य) बन जाता है।
- रायता और दही-बड़े आदि में भी अधिकांशतः दही को गर्म नहीं किया जाता, इसलिए दाल के वड़े या बूंदी के साथ मिलकर यह तुरंत द्विदल दोष का कारण बनता है।
- बाज़ार में मिलने वाले आम के रस (मैंगो पल्प) में कच्चा दूध मिलाया जाता है। उसके साथ यदि मूँग की दाल, कढ़ी, मटर जैसी सब्ज़ियाँ या चने के आटे से बने नमकीन/फरसाण खाए जाएँ, तो पेट में जाकर द्विदल बनता है।
- कच्चे दूध को सामान्य गर्म करके उसमे इंस्टेंट कॉफी या टी-बैग मिलाकर बनाई गई चाय-कॉफी के साथ गाँठिया, पापड़ी आदि (जो चने के आटे से बनते हैं) खाने से भी द्विदल दोष लगता है।
- जैसे कच्चे दूध-दही-छाछ के साथ मूँग, चना, उड़द, तुअर दाल, चवला आदि दलहन मिलकर द्विदल बनते हैं; ठीक वैसे ही हरे मटर, हरी चवलाफली, हरी या सूखी मेथी की भाजी, ग्वारफली, वालोर (सेम फली) और तुवर आदि के साथ मिलने पर भी द्विदल होता है।

२०. रात्रिभोजन : जैन परंपरा में रात्रिभोजन को 'नरक का प्रथम द्वार' माना गया है। सूर्यास्त के बाद वातावरण में अचानक बदलाव आता है और अनगिनत सूक्ष्म जीव (त्रस जीव) उत्पन्न हो जाते हैं। रात के समय भोजन करने से इन जीवों की अनजाने में भी भारी हिंसा होती है, जो तीव्र पाप कर्म के बंध का

कारण बनती है। बिजली के प्रकाश में भी वे सूक्ष्म जीव आँख से दिखाई नहीं देते लेकिन भोजन में गिर जाते हैं। इससे न केवल स्वास्थ्य को गंभीर नुकसान पहुँचता है, बल्कि जीवहिंसा का भारी दोष भी लगता है।

२१. **चलित-रस (बासी भोजन) :** खाद्य पदार्थ एक निश्चित समय मर्यादा बीत जाने के बाद बिगड़ने (सड़ने) लगते हैं। जब भोजन की गंध, स्वाद या रंग बदल जाता है, तो उसे 'चलित रस' कहा जाता है। चलित रस होते ही उसमें असंख्य द्वीन्द्रिय जीव तथा सूक्ष्म काई और फफूंद (फूग) उत्पन्न हो जाती है इसलिए ऐसे चलित रस वाले पदार्थ पूर्णतः अभक्ष्य होते हैं।

- **एक दिन की मर्यादा :** रोटला, रोटी, भाकरी, थेपले, इडली, डोसा, कचौड़ी, समोसे आदि जिस दिन बनाए गए हों, उसी दिन तक भक्ष्य (खाने योग्य) रहते हैं। दूसरे दिन वे बासी (चलित रस) माने जाते हैं। इनमें पानी का अंश होने के कारण लार जैसे बेइन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं इसलिए इन्हें स्वयं भी नहीं खाना चाहिए और कुत्तों या अन्य पशुओं को भी नहीं खिलाना चाहिए।

  बिना पक्की चाशनी के बने पेड़े दूसरे दिन चलित रस हो जाते हैं। यदि चटनी पीसते समय उसमें पानी डाला गया हो, या उसमें मेथी, दालिया (भुने चने), बेसन आदि मिलाया गया हो तो वह चटनी दूसरे ही दिन बासी और अभक्ष्य हो जाती है। चटनी बनाते समय यदि हरा धनिया या मिर्च पानी से धोए गए हों और उनको सुखाया न गया हो, तो चटनी में नमी रहने के कारण वह अगले दिन अभक्ष्य बन जाती है। कड़क सिकी हुयी या तली हुयी वस्तु ही दूसरे दिन चलती है।

- विशेष ध्यान रखने योग्य बात: काल (समय मर्यादा) पूरा होने से पहले भी यदि किसी भोजन का रंग या स्वाद बदल जाए, तो वह जीवोत्पत्ति का स्पष्ट लक्षण है, अतः वह तुरंत अभक्ष्य बन जाता है।

२२. **बोल-अचार :** आम, गुंदा (लसोड़ा), खारक (छुआरा), मिर्च आदि का वह सूखा अचार जिसे धूप अच्छी तरह न दिखाई गई हो और जो आसानी से मुड़ (लचीला हो) सकता हो, वह तीन दिन के बाद ही अभक्ष्य हो जाता है। कई लोग कहते हैं कि हमने 'तीन धूप' देकर अचार बनाया है; लेकिन ध्यान रहे, गिनती की तीन धूप देना पर्याप्त नहीं है, बल्कि जब तक वह पूरी तरह कड़ा (चूड़ी की तरह सख्त) न सूख जाए, तब तक ५-७ या उससे अधिक दिन भी धूप देनी चाहिए।

इस प्रकार अच्छी तरह सुखाने के बाद यदि उसमें राई, गुड़ और 'तेल बुड़' (अर्थात अचार की सामग्री तेल के अंदर पूरी तरह डूबी रहे उतना पर्याप्त तेल) हो, तो वह अचार जब तक अपना वर्ण, गंध, रस और स्पर्श नहीं बदलता, तब तक भक्ष्य रह सकता है। लेकिन यदि तेल कम हो, तो वह समय से पहले ही बिगड़कर अभक्ष्य हो जाता है।

- **अन्य अभक्ष्य पदार्थ:** सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करते ही कच्चा-पक्का आम, रायण आदि फल तुरंत अभक्ष्य हो जाते हैं। जब तक सूर्य 'स्वाति नक्षत्र' में प्रवेश नहीं करता, तब तक ये वस्तुएं अभक्ष्य ही रहती हैं।
- नींबू के फूल (साइट्रिक एसिड), साबूदाना और सिंघाड़ा आदि के औद्योगिक निर्माण की प्रक्रिया हिंसक और अशुद्ध होती है इसलिए ये अभक्ष्य हैं।
- फूलगोभी (कॉलीफ्लावर) के भीतर बहुत अधिक संख्या में त्रस जीव (कीड़े) छुपे होते हैं, जिन्हें पूरी तरह साफ करना असंभव है इसलिए इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।
- बाज़ार का रवा (सूजी), मैदा, बेसन, बिस्कुट आदि को पीसने और बनाने की प्रक्रिया में 'जयणा' नहीं रखा जाता और न ही काल-मर्यादा का ध्यान रखा जाता है, इसलिए ये उपयोग में नहीं लेने चाहिए।
- सिरका (विनेगर) और यीस्ट जैसे पदार्थों के निर्माण में अत्यधिक सड़न प्रक्रिया होने के कारण इनमें भारी मात्रा में जीवों की उत्पत्ति होती है, अतः ये पूर्णतः अभक्ष्य हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि: "आप किसी एक जीव को अभयदान दें, तो उसका फल सोने के मेरु पर्वत जितने बड़े दान से भी कहीं अधिक होता है।" इन सभी बताए गए अभक्ष्य पदार्थों का मन, वचन और काया से सर्वथा त्याग करने पर, श्रावक को एक ही स्थान पर बैठे-बैठे असंख्य और अनंत जीवों को अभयदान देने का महान फल प्राप्त होता है।

● ● ●

मौखिक कक्षा - १४

सूत्र :	जीवविचार	५०
प्रश्नोत्तरी :	जीवविचार प्रश्नोत्तरी	५०
		१००

मौखिक कक्षा - १५

सूत्र :	नवतत्त्व	५०
प्रश्नोत्तरी :	नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी	५०
		१००

मौखिक कक्षा - १६

सूत्र :	प्रथम कर्मग्रंथ	५०
प्रश्नोत्तरी :	प्रथम कर्मग्रंथ प्रश्नोत्तरी	५०
		१००

मौखिक कक्षा - १७

सूत्र :	तत्त्वार्थ सूत्र - १ थी ५ अध्याय	५०
अर्थ :	तत्त्वार्थ सूत्र - १ थी ५ अध्याय अर्थ	५०
		१००

मौखिक कक्षा - १८

सूत्र :	तत्त्वार्थ सूत्र - ६ थी १० अध्याय	५०
अर्थ :	तत्त्वार्थ सूत्र - ६ थी १० अध्याय अर्थ	५०
		१००

● ● ●

लिखित : कक्षा - १

मूल सूत्र : नवकार से वंदितु (सूत्र १ से ३६)
(पृष्ठ संख्या १ से ४, १२ से १६, २६ से ३०, ४१)

अर्थ : नवकार से सामायिक वयजुत्तो
(पृष्ठ संख्या ३१, ३२, ४६, ६०, ६१, ७८, ९३, १०८)

विधि : देववंदन की विधि

चैत्यवंदन : श्री आदीश्वर भगवान का - आदि देव अलवेसरू

स्तवन : श्री आदीश्वर भगवान का - जग जीवन जग वालहो

थोय : श्री आदि जिनवर राया (पृष्ठ संख्या ८२)

रत्नाकर पच्चीसी : १ से ५ गाथा (पृष्ठ संख्या १०)

राजनगर प्रश्नोत्तरी : ३१ से ६०(१) (पृष्ठ संख्या ३८, ६७, ८५)

श्री आदीश्वर भगवान का चैत्यवंदन

आदिदेव अलवेसरू, विनीतानो राय;
नाभिराया कुलमंडणो, मरूदेवा माय। (१)

पांचसो धनुष्यनी देहडी, प्रभुजी परम दयाल;
चोराशी लाख पूर्वनुं, जस आयु विशाल। (२)

वृषभ लंछन जिन वृषधरू ए, उत्तम गुणमणीखाण;
तस पदपद्म सेवन थकी, लहीए अविचल ठाण। (३)

श्री आदीश्वर भगवान का स्तवन

जगजीवन जगवालहो, मरुदेवीनो नंद लाल रे,
मुख दीठे सुख उपजे, दरिशन अतिहि आनंद लाल रे। (१)

आंखडी अम्बुज पांखडी, अष्टमी शशि सम भाल लाल रे;
वदन ते शारद चंदलो, वाणी अतिहि रसाल लाल रे। (२)

लक्षण अंगे विराजतां, अडहिय सहस उदार लाल रे;

रेखा कर चरणादिके, अभ्यंतर नहि पार लाल रे। (३)

इन्द्र चन्द्र रवि गिरितणां, गुण लही घडियुं अंग लाल रे;
भाग्य किहां थकी आवियुं, अचरिज एह उत्तुंग लाल रे। (४)

गुण सघला अंगी कर्या, दूर कर्या सवि दोष लाल रे;
वाचक "जशविजये" थुण्यो, देजो सुखनो पोष लाल रे। (५)

लिखित : कक्षा - २

मूल सूत्र : आयरिय उवज्झाए से सकलतीर्थ (सूत्र ३७ से ५१)
(पृष्ठ संख्या ५२ से ५९), स्नातस्या (सूत्र ५३)
(पृष्ठ संख्या ७६)

अर्थ : जगचिंतामणि से संसारदावानल
(पृष्ठ संख्या १४८, १६४ से १६६, १७३ से १७६)

विधि : राई प्रतिक्रमण की विधि (पृष्ठ संख्या ९७),
तपचिंतवणी का काउस्सग्ग

चैत्यवंदन : श्री सीमंधर जगधणी (पृष्ठ संख्या ८०),
श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र (पृष्ठ संख्या ९५)

स्तवन : सुणो चंदाजी (पृष्ठ संख्या ८१),
विमलाचल नितु नंदीए (पृष्ठ संख्या ९६)

थोय : श्री सीमंधर जिनवर (पृष्ठ संख्या ८२),
श्री शत्रुंजय मंडण (पृष्ठ संख्या ९६)

रत्नाकर पच्चीसी : ६ से १० गाथा

राजनगर प्रश्नोत्तरी : ६१ से ९० (पृष्ठ संख्या १००, ११६)

तप चिंतवणी के काउस्सग्ग में करने योग्य चिंतन

श्री प्रभु वीर ने ६ महीने के चोविहार उपवास किए थे - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।

चंपा श्राविका ने ६ महीने के तिविहार उपवास किए थे - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।

हे चेतन! ५ महीने का उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
हे चेतन! ४ महीने का उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
हे चेतन! ३ महीने का उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
हे चेतन! २ महीने का उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
हे चेतन! डेढ़ महीने का उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
इस प्रकार एक-एक कम करते हुए... ४४ दिन, ४३ दिन... उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
मासक्षमण (३० उपवास) कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
२९ उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
२८ उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
इस प्रकार एक-एक कम करते हुए... १७ उपवास कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
चौंतीस-भक्त कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
बत्तीस-भक्त कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
इस प्रकार दो-दो कम करते हुए... दश-भक्त कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
अट्ठम (३ उपवास) कर - मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है।
इस प्रकार छठ (२ उपवास), उपवास, आयंबिल, नीवी, एकासना, बियासना, पुरिमड्ढ, साड्ढपोरिसी, पोरिसी, नवकारशी तक विचार करना।

पूर्व में अधिक से अधिक जो तप किया हो, वह तप जब आए तब "मेरी शक्ति नहीं है, परिणाम नहीं है", इसके बदले "शक्ति है, परिणाम नहीं है" ऐसा विचार करना।

आज जो तप करना हो, वह तप जब आए तब "शक्ति है, परिणाम है" ऐसा विचार करना। उसके बाद का तप चिंतवे बिना ही 'नमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) पालना (पूरा करना)।

लिखित : कक्षा - ३

मूल सूत्र : सकलार्हत् (सूत्र ५२) (पृष्ठ संख्या ७३), संतिकरम्
(सूत्र ५४) (पृष्ठ संख्या ७७), मोटीशान्ति
(सूत्र ५६) (पृष्ठ संख्या १०५)
अर्थ : पुक्खरवरदीवड्ढे से इच्छामि पडिक्कमिउं तक
विधि : देवसि प्रतिक्रमण की विधि (पृष्ठ संख्या ११२)
सज्झाय : प्रणमुं तुमारा पाय प्रसन्नचंद्र (पृष्ठ संख्या ८२)
रत्नाकर पच्चीसी : ११ से १५ गाथा
राजनगर प्रश्नोत्तरी : ९१ से १२० (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित : कक्षा - ४

मूल सूत्र : अजितशांति (सूत्र ५५) (पृष्ठ संख्या ८८)
और तिजयपहुत्त (सूत्र ५९) (पृष्ठ संख्या १७०)
अर्थ : वंदित्तु सूत्र (सूत्र ३६) (पृष्ठ संख्या १८५)
विधि : मुहपत्ति पडिलेहण के ५० बोल (पृष्ठ संख्या ६३)
चैत्यवंदन : पर्व पर्युषण गुणनीलो
स्तवन : सुणजो साजन संत (पृष्ठ संख्या १०९)
थोय : पुण्यनुं पोषण (पृष्ठ संख्या ११०)
रत्नाकर पच्चीसी : १६ से २० गाथा
राजनगर प्रश्नोत्तरी : १२१ से १३९ (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित : कक्षा - ५

मूल सूत्र : अतिचार (सूत्र ५७) (पृष्ठ संख्या ११८), भक्तामर
(सूत्र ५८) (पृष्ठ संख्या १६०)
अर्थ : आयरिय उवज्झाए से सकलतीर्थ तक
विधि : पक्खि, चउमासी (पृष्ठ संख्या १५१, १५३),
संवत्सरी और छींक के काउस्सग्ग की विधि
रत्नाकर पच्चीसी : २१ से २५ गाथा
राजनगर प्रश्नोत्तरी : १४० से १५५ (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित : कक्षा - ६

मूल सूत्र : नमिऊण (सूत्र ६०) (पृष्ठ संख्या १७१),
कल्याण मंदिर (सूत्र ६१) (पृष्ठ संख्या १८१)
अर्थ : स्नातस्या, सकलार्हत्
स्तवन : २७ भव की ढाल पहली
(दोहा : श्री शुभविजय सुगुरु नमी, पहेले भवे)
थोय : मनोहर मूर्ति महावीर तणी
सज्झाय : जुओ रे जुओ जैनो केवा व्रतधारी
राजनगर प्रश्नोत्तरी : १५६ से १७५ (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित : कक्षा - ७

मूल सूत्र : जीवविचार
अर्थ : जीवविचार, संतिकरम्
स्नात्र : स्नात्र की विधि, सरस शांति सुधारस से
शुभ लग्ने जिन... (पृष्ठ संख्या १३८)
स्तवन : २७ भव की ढाल दूसरी... (नवो वेष रचे)
थोय : जय जय भवि हितकर (पृष्ठ संख्या ३३)
सज्झाय : जगत है स्वार्थ का साथी (वैराग्य की)
राजनगर प्रश्नोत्तरी : १७६ से २१० (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित : कक्षा - ८

मूल सूत्र : नवतत्व
अर्थ : नवतत्व
स्नात्र : सांभलो कलशथी पूर्ण (पृष्ठ संख्या १४४)
स्तवन: २७ भव की ढाल तीसरी (पांचवें भवे)
थोय : जीवाजीवा पुण्य
सज्झाय : जोईतुं नथी जोईतुं नथी (बुढ़ापे की)
राजनगर प्रश्नोत्तरी : २११ से २६१ (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित : कक्षा - ९

मूल सूत्र : दंडक प्रकरण
अर्थ : दंडक प्रकरण
चैत्यवंदन : कल्पवृक्षनी छांयडी
स्तवन : २७ भव की ढाल चौथी, पांचवीं
(अढारमे भवे सात, नयर महाणकुंडमां)
थोय : श्री आदि जिनवर राया (१ से ४)
राजनगर प्रश्नोत्तरी : २६२ से २८७ (राजनगर ज्ञानमाला)

श्री आदीश्वर भगवान की थोय

आदि जिनवर राया, जास सोवन्न काया;
मरुदेवी माया, धोरी लंछन पाया;
जगत स्थिति निपाया, शुद्ध चारित्र पाया,
केवल सिरी राया, मोक्ष नगरे सिधाया। १
सवि जिन सुखकारी, मोह मिथ्या निवारी;
दुर्गति दु:ख भारी, शोक संताप वारी।
श्रेणी क्षपक सुधारी, केवलानंत धारी;
नमीए नर नारी, जेह विश्वोपकारी। २
समवसरण बेठा, लागे जे जिनजी मिठा;
करे गणप पइट्ठा, इन्द्र चन्द्रादि दीठा।
द्वादशांगी वरिट्ठा, गुंथतां टाले रिट्ठा;
भविजन होय हिट्ठा, देखी पुण्ये गरिट्ठा। ३
सुर समकितवंता, जेहऋद्धे महंता;
जेह सज्जन संता, टालीए मुज चिंता।
जिनवर सेवंता, विघ्न वारे दुरंता;
जिन उत्तम थुणंता, पद्मने सुख दिंता। ४

लिखित : कक्षा - १०

मूल सूत्र : लघुसंग्रहणी, संथारा पोरिसी
अर्थ : लघुसंग्रहणी, संथारा पोरिसी
स्तवन : हालरडुं (माता त्रिशला जुलावे) (पृष्ठ संख्या १३०)
राजनगर प्रश्नोत्तरी : २८८ से ३१० (राजनगर ज्ञानमाला)

संथारा पोरिसी की विधि

सर्वप्रथम खमा० देकर 'इच्छा० बहुपडिपुन्ना पोरिसी राइय संथारए ठाईशुं ?' 'इच्छं', कहकर चउक्कसाय का चैत्यवंदन जय वीयराय पर्यंत करें। फिर खमा० 'इच्छा० संथारा पोरिसी विधि भणवा मुहपत्ति पडिलेहुं? इच्छं' कहकर मुहपत्ति पडिलेहन करके 'निसिहि निसिहि निसिहि नमो खमासमणाणं गोयमाईणं महामुणीणं' इतना पाठ नवकार तथा करेमि भंते यह सब तीन बार कहें। फिर संथारा पोरिसी का पाठ बोलें।

संथारा पोरिसी

अणुजाणह जिट्ठिज्जा,
अणुजाणह परमगुरु, गुरुगुणरयणेहिं मंडियसरीरा,
बहुपडिपुण्णा पोरिसी, राइय संथारए ठामि ? ...१
अणुजाणह संथारं, बाहुवहाणेण वामपासेणं,
कुक्कुडी पाय पसारण, अतरंत पमज्जए भूमिं। ...२
संकोइअ संडासा, उव्वट्टंते अ कायपडिलेहा,
दव्वाई-उवओगं, उसास-निरुंभणा-लोए। ...३
जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाई रयणीए,
आहार-मुवहि-देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं। ...४
चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं। ...५
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो। ...६
चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि,

सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि। ...७
पाणइवाय-मलिअं, चोरिक्कं मेहुणं दविणमुच्छं,
कोहं माणं मायं, लोहं पिज्जं तहा दोसं। ...८
कलहं अब्भक्खाणं, पेसुन्नं रइअरइ-समाउत्तं,
परपरिवायं माया-मोसं मिच्छत्तसल्लं च। ...९
वोसिरिसु इमाई, मुक्ख-मग्ग-संसग्ग-विग्धभूयाई,
दुग्गइ-निबंधणाई, अट्ठारस पावठाणाई। ...१०
एगोऽहं नत्थि मे कोई, नाहमन्नस्स कस्सइ,
एवं अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासइ। ...११
एगो मे सासओ अप्पा, नाण-दंसण-संजुओ,
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा। ...१२
संजोगमूला जीवेण, पत्ता दुक्ख परंपरा,
तम्हा संजोग संबंधं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं। ...१३
अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो,
जिण-पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मतं मए गहिअं। ...१४
(यह चौदहवीं गाथा तीन बार बोलनी है। फिर सात नवकार गिनने हैं।)
खमिअ खमाविअ मइ खमह, सव्वह जीवनिकाय
सिद्धह साख आलोयणह, मुज्झह वइर न भाव। ...१५
सव्वे जीवा कम्मवस, चउदह राज भमंत,
ते मे सव्व खमाविआ, मुज्झ वि तेह खमंत। ...१६
जं जं मणेण बद्धं, जं जं वाएण भासिअं पावं,
जं जं काएणं कयं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स। ...१७

लिखित : कक्षा - ११

मूल सूत्र : चैत्यवंदन भाष्य
अर्थ : चैत्यवंदन भाष्य
चैत्यवंदन : ॐ नमः पार्श्वनाथाय
स्तवन : राधा जेवा फूलडा,

पंचकल्याणक की पहली ढाल
(दुहा : शासननायक शिवकरण,
सांभलजो ससनेहि सयणां)
थोय : तीन निसिही (१० त्रिक की)
राजनगर प्रश्नोत्तरी : ३११ थी ३३१ (राजनगर ज्ञानमाला)

लिखित: कक्षा १२

मूलसूत्र : गुरुवंदन भाष्य
अर्थ : गुरुवंदन भाष्य
चैत्यवंदन : नेमिनाथ बावीसमा
स्तवन : में आज दरिसण पाया
पंचकल्याणक की दूसरी ढाल (भव सत्तावीश स्थूलमांही)
थोय : सुर असुर वंदित पाय (श्री नेमिनाथ भगवान की)

लिखित: कक्षा १३

मूलसूत्र : पच्चक्खाण भाष्य
अर्थ : पच्चक्खाण भाष्य
चैत्यवंदन : दशमे भवे शान्तिनाथ
स्तवन : शान्ति जिनेश्वर साहिबा रे,
पंचकल्याणक की तीसरी ढाल (करी महोच्छव सिद्धारथभूप),
कलश : 'इम चरम जिनवर'
थोय : सकलकुशलवल्ली (संस्कृत) (श्री शान्तिनाथ भगवान की)

लिखित: कक्षा १४

मूलसूत्र : तत्त्वार्थ - १ से ५ अध्याय अर्थ सहित
चैत्यवंदन : श्री सिद्धचक्र आराधीये
स्तवन : नवपदनुं धरजो ध्यान
थोय : अरिहंत नमो
शरणा: १ और २

लिखित: कक्षा १५

मूलसूत्र	: तत्त्वार्थ - ६ से १० अध्याय अर्थ सहित
चैत्यवंदन	: आज देव अरिहंत नमुं
स्तवन	: आज मारा प्रभु सामुं जोवोने
थोय	: षड् अतिशय
शरणा	: ३ और ४

लिखित: कक्षा १६

मूलसूत्र	: कर्मग्रंथ - पहला कर्मग्रंथ अर्थसहित
सज्झाय	: पंचसूत्र - "णमो वीयरागाणं" से "मिच्छा मि दुक्कडं" तक की गाथाएँ (अर्थ सहित)

लिखित: कक्षा १७

मूलसूत्र	: कर्मग्रंथ - दूसरा कर्मग्रंथ अर्थसहित
सज्झाय	: पंचसूत्र - "होउ मे एसा सम्मं" से "सुहिणो भवंतु जीवा" (पूर्ण) तक की गाथाएँ (अर्थ सहित)

लिखित: कक्षा १८

मूलसूत्र	: कर्मग्रंथ - तीसरा कर्मग्रंथ अर्थसहित
सज्झाय	: अमृतवेल की सज्झाय

अमृतवेल की सज्झाय

चेतन! ज्ञान अजुवालीये, टालीये मोह संताप रे;
चित्त डमडोलतुं वालीए, पालीए सहज गुण आप रे. १
उपशम अमृतरस पीजीए, कीजीए साधु गुणगान रे;
अधम वयणे नवि खीजीए, दीजीए सज्जनने मान रे. २
क्रोध अनुबंध नवि राखीए, भाखीए वयण मुख साच रे;

समकित रत्नरूचि जोडीए, छोडीए कुमति मति काच रे. ३
शुद्ध परिणामने कारणे, चारनां शरण धरे चित्त रे;
प्रथम तिहां शरण अरिहंतनुं, जेह जगदीश जग मित्त रे. ४
जे समोसरणमां राजतां, भांजता भविक संदेह रे;
धर्मना वचन वरसे सदा, पुष्करावर्त जिम मेह रे. ५
शरण बीजुं भजे सिद्धनुं, जे करे कर्म चकचूर रे;
भोगवे राज शिवनगरनुं, ज्ञान आनंद भरपूर रे. ६
साधुनुं शरण त्रीजुं धरे, जेह साधे शिवपंथ रे;
मूल उत्तर गुणे जे वर्या, भव तर्या भाव निग्रंथ रे. ७
शरण चोथुं धरे धर्मनुं, जेहमां वर दयाभाव रे;
जेह सुख हेतु जिनवर कह्यो, पाप जल तरवा नाव रे. ८
चारनां शरण ए पडिवजे, वली भजे भावना शुद्धि रे;
दुरित सवि आपणा निंदिए, जीम होये संवर वृद्धि रे. ९
इहभव परभव आचर्या, पाप अधिकरण मिथ्यात्व रे;
जे जिनाशातनादिक घणां, निंदिए तेह गुणघात रे. १०
गुरूतणा वचन जे अवगणी, गुंथिया आप मत जाल रे;
बहुपरे लोकोने भोलव्यां, निंदिए तेह जंजाल रे. ११
जेह हिंसा करी आकरी, जेह बोल्या मृषावाद रे;
जेह परधन हरी हरखीयां, कीधलो काम उन्माद रे. १२
जेह धन धान्य मूर्छा धरी, सेविया चार कषाय रे;
राग ने द्वेषने वश हुआ, जे कीयो कलह उपाय रे. १३
जूठ जे आल परने दिया, जे कर्या पिशुनता पाप रे;
रति अरति निंद माया मृषा, वलीय मिथ्यात्व संताप रे. १४
पाप जे एहवा सेवियां, निंदिए तेह त्रिहुं काल रे;
सुकृत अनुमोदना कीजीए, जिम होय कर्म विसराल रे. १५
विश्व उपकार जे जिन करे, सार जिननाम संयोग रे;
तेह गुण तास अनुमोदिए, पुण्य अनुबंध शुभयोग रे. १६
सिद्धनी सिद्धता कर्मना, क्षय थकी उपनी जेह रे;
जेह आचार आचार्यनो, चरणवन सींचवा मेह रे. १७

जेह उवज्झायनो गुण भलो, सूत्र सज्झाय परिणाम रे;
साधुनी जेह वली साधुता, मूल उत्तर गुण धाम रे. १८
जेह विरति देशश्रावक तणी, जेह समकित सदाचार रे;
समकित दृष्टि सुरनर तणो, तेह अनुमोदिये सार रे. १९
अन्यमां पण दयादिक गुणो, जेह जिनवचन अनुसार रे;
सर्व ते चित्त अनुमोदिए, समकित बीज निरधार रे. २०
पाप नवि तीव्र भावे करे, जेहने नवि भव राग रे;
उचित स्थिति जेह सेवे सदा, तेह अनुमोदवा लाग रे. २१
थोडलो पण गुण परतणो, सांभली हर्ष मन आण रे;
दोष लव पण निज देखतां, निर्गुण निजआतमा जाण रे. २२
उचित व्यवहार अवलंबने, एम करी स्थिर परिणाम रे;
भाविये शुद्धनय भावना, पापनाशय तणुं ठाम रे. २३
देह मन वचन पुद्गल थकी, कर्मथी भिन्न तुज रूप रे;
अक्षय अकलंक छे जीवनुं, ज्ञान आनंद स्वरूप रे. २४
कर्मथी कल्पना उपजे, पवनथी जेम जलधि वेल रे;
रूप प्रगटे सहज आपणुं देखतां दृष्टि स्थिर मेल रे. २५
धारतां धर्मनी धारणा, मारतां मोहवड चोर रे;
ज्ञानरुचि वेल विस्तारतां, वारतां कर्मनुं जोर रे. २६
राग विष दोष उतारतां, जारतां द्वेष रस शेष रे;
पूर्व मुनि वचन संभारतां, वारतां कर्म निःशेष रे. २७
देखिये मार्ग शिव नगरनो, जे उदासीन परिणाम रे;
तेह अणछोडतां चालीए, पामीये जिम परमधाम रे. २८
श्री नयविजय गुरू शिष्यनी सीखडी अमृत वेल रे;
एह जे चतुर नर आदरे, ते लहे सुयश रंगरेल रे. २९

लिखित: कक्षा १९

मूलसूत्र	: कर्मग्रंथ - चौथा कर्मग्रंथ अर्थसहित
सज्झाय	: समकित के ६७ (सडसठ) बोल की सज्झाय ढाल १ से ५ (अर्थ सहित)

लिखित: कक्षा २०

मूलसूत्र	: कर्मग्रंथ - पांचवां कर्मग्रंथ अर्थसहित
सज्झाय	: समकित के ६७ (सडसठ) बोल की सज्झाय ढाल ६ से ९ (अर्थ सहित)

लिखित: कक्षा २१

मूलसूत्र	: कर्मग्रंथ - छठ्ठा कर्मग्रंथ अर्थसहित
सज्झाय	: समकित के ६७ (सडसठ) बोल की सज्झाय ढाल १० से १२ (अर्थ सहित)

लिखित: कक्षा २२

ज्ञानसार अष्टक (मूल तथा अर्थ सहित)

लिखित: कक्षा २३

हैमसंस्कृत प्रवेशिका भाग - १

लिखित: कक्षा २४

हैमसंस्कृत मध्यमा (दूसरी पुस्तक)

लिखित: कक्षा २५

प्राकृत विज्ञान पाठमाला

नियमावली

(१) प्रत्येक परीक्षार्थी को पहली बार अपना नाम रजिस्टर (दर्ज) करवाना होगा। जो वर्ष के दौरान कभी भी करवा सकते है और परीक्षा के लिए ओनलाईन रजिस्ट्रेशन करवाना होगा।

(२) प्रत्येक परीक्षार्थी को रजिस्ट्रेशन फीस (शुल्क) भरनी होगी। फीस भरनेवाले मौखिक कक्षा के विद्यार्थी को संस्था द्वारा प्रगतिपत्रक दिया जायेगा। जिसमें दी गई परिक्षा दर्ज की जायेगी, प्रगतिपत्रक विद्यार्थी के पास रहेगा।

(३) मौखिक परीक्षा के लिए उपस्थित होने पर प्रगतिपत्रक अपने साथ लाए। इसके बिना मार्क नही दिए जाएंगे।

(४) परीक्षा के पासींग मार्क्स ६० है। लेकिन सूत्र विभाग में ६०% मार्क्स फरजियात है।

(५) ऊत्तीर्ण विद्यार्थी वेबसाईट से प्रमाणपत्र डाउनलोड कर सकते है।

(६) मौखिक और लिखित परीक्षा एक साथ दी जा सकती है।

(७) एक ही समय में दो मौखिक परीक्षाएं नहीं दी जा सकती।

(८) छात्र को दी गई User ID, Password और रजी. ID द्वारा स्वयं वेबसाइट में (एड्रेस चेंज जैसे) सुधार सकते है। ओर परीक्षा का फोर्म भी भर सकते है।

(९) ओनलाईन परीक्षा देनेवाले विद्यार्थी इनाम और एवोर्ड के पात्र नही है। सिर्फ सर्टीफिकेट डाउनलोड कर सकते है।

(१०) एवोर्ड व्यवस्था सिर्फ अहमदाबाद तक सिमित है।

(११) प्रथम समय परीक्षा देने वाले विद्यार्थी कक्षा 1 से 7 तक किसी भी कक्षा से शुरूआत कर सकते है।

(12) परीक्षा देने के लिए उम्र का बंधन नहीं है।

पुरस्कार (ईनाम)के लिए पात्रता (योग्यता) :

मौखिक कक्षा 1	उम्र 8 साल तक
मौखिक कक्षा 2	उम्र 10 साल तक
मौखिक कक्षा 3 से 10	उम्र 20 साल तक
मौखिक कक्षा 11 से 18	कोई भी उम्र

लिखित मे सभी इनाम के पात्र है